पहला अध्याय
अर्जुन विषाद योग

धृतराष्ट

उस कुरुक्षेत्र में धर्म क्षेत्र में समर कमना ले मित्रों में
हे संजय क्या किये हमारे पुत्र और पाण्डु पुत्रों ने ?

संजय

पण्डव सेना का व्युह देख तव दुर्योधन ने यही कहा
आचार्य निरीक्षण करें इन्हे सुनिये मेरा संयोजन कया ?
सव शुर वीर पराक्रमी हैं दिग्गज महिपाल खडे हैं वे
सव एक एक से योद्धा हैं फिर कितने युद्ध लडे हैं वे ।
ये भीम और अर्जुन समान वहुवी उपस्थित खडे यहाँ
हैं सव्य सात्यकी पुरुजीत ये सव के सव हैं अडे यहाँ
द्रुपद विराट और धृष्टकेतुयह उत्तमोजा और चेकितान
यह कुन्तिभोज सा धनुर्धारी हें काशीराज सा वीर्यवान ।
पुत्र पाँचो द्रौपदी के है सुभद्रा का अभिमन्यु
हैं सव के सव ही महारथ ीऔर पराक्रमी है युधामन्यु ।
हे द्वीजोत्तम अव सुनिये अपनी सेना के लोगों को
मेरी खातिर जो त्याग समर में आये हैं सव भोगों को ।
स्वयं आप और भीष्मपितामह कवचधारी है कर्ण यहाँ
हैं भुरीश्रवा और अश्वथामा हैं कृपाचार्य विकर्ण यहा
भीष्म पितामह से रक्षित है यह मेरी सेनाअजेय
भीमा रक्षित सेना वह मैं फतह करुँ क्या है दुर्जेय ।
ठौर अपने थिर होकर इसलिये सव मोचों पर
रक्षा करे सव ओर से अव भीष्म की ही कृपाकर ।
श्रवण कर कुरुवृद्ध ने यह गर्जन किया सिंह के समान
हर्ष उत्पन्न हो उसे यों शंख फुके प्रतापवान ।
तव तुमुल से वज उठे सव ढोल वाजे युद्ध के
सुन भयंकर शव्द उनके व्योम भी अवरुद्ध से ।
तव अलौकिक शंख फुके पार्थ और मुरली मनोहर
पृथक पृथक वीर सवके पृथक पृथक शंख सुन्दर ।
भीमकर्मा पौन्ड्र फुँका युधिष्ठिर ने अनन्त विजय
पांचजन्य को कृष्ण फुँके देवदत्त को धनंजय ।
सुघोस नामक नकुल फुँका सहदेव फुँका मणिपुष्पक
द्रुपद शिखण्डी सात्यिकी सवने वजाये पृथक पृथक ।
संग जया के और नभ के शव्द सुन उनके भयंकर
विदिर्ण से हृदय हुये धृतपुत्र के वे शव्द सुनकर ।
पार्थ वोला कृष्ण से तव देख कौरव को व्यवस्थित
कर चलो अव आप अच्युत रथ समर के मध्य ीसथत ।
है योग्य किससे लड सकुँ मैं इस युद्ध रुप व्यापार में
मैं देखुंगा उन लोगो को आये जो इस संहार में ।
जो हित चाहे इस समर वीच उस दुर्वुद्धि दुर्योधन का
मैं ठीक तरह से देख सकु ँफिर करुँ यहाँ अपने मन का ।
सन्मुख लाकर उत्तम रथ को तव भीष्म द्रोण और राजाओं के

DO NOT COPY

वोले कृष्ण हे अर्जुन देखो सैन्य इकठ्ठे कौरवो के ।
देखा दोनों सेनाओं में तव वडे गौर से वहाँ पार्थ
सव भरे पडे हैं अपने ही वह करुणा से कर उठा आर्त ।

अर्जुन

शोकाकुल वह वोल उठा यह देख स्वजन समुदाय नाथ
आनन सुखा संग रोमहर्ष सव अंग हुये निरुपाय नाथ ।
जल रहा है त्वचा तन का गाण्डीव कर से गिर रहा
है असम्भव खडा रहना भ्रम का कुहासा घिर रहा ।
निमित्त भी विपरीत केशव है नहीं कल्याणकर
सुख विजय का करुँगा क्या कुल का संहार कर ?
कर भोग से क्या काम केशव विजय से है क्या प्रयोजन
जिनके लिये मैं सुख सजाउँ हैं वही कर त्याग जीवन ।
यहाँ खडे हैं गुरुजन ताउ चाचा मामा और पुत्र
दादा पोते साले सव हैं कितने सम्वंध ीऔर मित्र ।
मार दे मुझको ये माधव सकता इन्हे मैं मार नहीं
धरती का तो क्या विसात त्रैलोक्य मिले स्वीकार नहीं ।
है खुशी क्या पाप ही है मार कौरव आततायी
हुँ नहीं मैं योग्व्य इसमें है नही कोई भलाई ।
पाप दिखता है नहीं चित्त लोभ से है भ्रष्ट इनका
इस पाप को पर त्यागना ही है उचित हम श्रेष्ठ जन का ।
कुल नाश से है नष्ट होता यह सनातन धर्म ही
तव पाप वढकर है कराता कुलनारी से दुष्कर्म ही ।
जगत में है जन्म लेता पाप से ही वर्णशंकर
स्वर्ग से पीतर नरक में कुल गिराते हैं भयंकर ।
वर्णशंकर दोष से है जाति धर्म का नाश होता
इन मनुष्यों का नरक में चीरकाल तक है वास होता
अहा, शोक है हम सयाने आये हैं इस पाप में
राज्य सुख के लोभ से लडते हैं अपने आप में ।
मुझ शस्त्रहीन का वध करे धृतराष्ट के ये अस्त्रधारी
यह मारना मेरे लिये होगा अति कल्याणकारी ।
त्याग शर को चाप को फिर पार्थ ने उद्वीग्न मन से
ज वसा पृष्ठ भाग में रथ के वडे ही खिन्न मन से ।

द्वीतिय अध्याय

सांख्य योग

संजय

करुणा और शोक से अर्जुन नेत्रो में था निर लिया
संजय वोला ऐसे क्षण में मधुसुदन ने यही कहा ।

कृष्ण

इस विषम स्थल में अर्जुन क्यो हुआ ऐसा विचार ?
यह न कीर्ति स्वर्ग देगा है न श्रेष्ठों का आचार ।
उठ खडा हो हे परंतप त्याग दुर्वल तुच्छ हृदय
है नहीं यह योग्य तेरे क्लीव मत वन हे धनंजय ।

DO NOT COPY

अर्जुन

प्रति भीष्म दोर्णचार्य के कैसे करुंगा वार रण में ?
युद्ध उनसे करुँ कैसे पुजता हुँ प्राण पण में ।
गुरुजनो के मारने से भीख वेहतर भोगना है
व्यर्थ है वह भोग इनके रक्त से जो भी सना है ।
है न कोई जिजिविषा इन कौरवों को कार कर
क्या पता है हम जितेंगे या चलेंगे हारकर ?
कौन सा है काम अच्छा हम नहीं यहं जानते
शिष्य हुँ मैं आपका गुरु आपको हम मानते ।
शरण में हुँ आपके चित्त मोह से है घिर गया
दिजिये शिक्षा मुझे मेरे लिये् निश्चय किया ।
स्वामी वन भी जाउँ मैं देवता भुलोक का
कर नहीं सकता परन्तु हरण मेरे शोक का ।क

संजय

हो गया फिर चुप अर्जुन इस तरह स्पष्ट कहस कर
तव समर के मध्य वोले कृष्ण अर्जुन से विहँस कर ।

कृष्ण

है वचन तो पंडितों से शोक पर अज्ञान का
शोक करता है न पंडित प्राण और निष्प्रण का ।
है नही वह काल और होगा न कोई काल ऐस
मैं नहीं तु सव नहीं फिर व्यर्थ का यह शोक कैसा ?
आत्मा हैनित्य मन विचलित न करती धीर का
यौन जरा कौमार्य सव है केंचुला शरीर का ।
शीत उष्मा क्षणिक सुख दुखविषय सुख अनित्य है
व्याकुल नहं जो इन सभी से पाते वही अमृत है ।
है नहीं अस्तित्व जग में असत का सुन हे परंतप
है नहीं अभाव सत का देखना ज्ञानी को सम्भव ।
व्याप्त जो है दृश्य वर्ग में है अनश्वर अर्थ उसका
नाश कर सकने में कोई है नहीं समर्थ उसका ।
युद्ध कर हे पार्थ केवल देह का ही नाश होता ।
नित्य,अप्रमेय अविनाशी जो तत्व है सारे जगत का ।
जो समझता है इसे मैं मार दुंगा या मरे
जानता है वह नहीं है आत्मा इन से परे ।
देह के भी नाश से नहीं आत्मा का नाश होता
यह अजन्मा नित्य शाश्वत मरता नहीं ना है जन्मता ।
मरवाता किसी को कोई कैसे कैसे किसी को मारता है ?
हे पार्थ जो इस आत्मा को नित्य अजन्मा जनाता है ।
तज पुरातन वस्त्र जैसे मानव नये को है पहनता
तज पुरातन तन नया तन आत्मा भी वरण करता ।
शस्त्र उसे ना मार सके ना अग्नि उसको जला सके
सोख सके ना उसको मारुत ना जल उसको गला सके ।
यह आत्मा है अचल स्थिर सर्वव्यापक नित्य है
अछेद्य है अदाह्य है अशोष्य और अचिन्त्य है ।
यह वदलता है नहीं यह तो सनातन मर्म है
इसलिये इस शोक को तो त्यागना ही धर्म है ।

DO NOT COPY

यदि आत्मा तो है जन्मता और मरता मान लो
फिर भी नहीं उपाय कोई शोक का तु जान लो ।
पैदा हुओ की मृत्यु निश्चित मृतकों को है जन्मना
इसलिये हे पार्थ सुनलो है उचित ना शोक करना ।
अव्यक्त पहले वाद में भी वीच में तन मायामय है
इसलिये फिर शोक कैसा वेदना का क्या विषय है ?
देखे सुने वोले इसे आश्चर्य से जो है वडा
सुनकर भी कोई पर इसे है पुर्ववत रहता खडा ।
है शोक करना वयर्थ अर्जुन तु देखता जितना भी तन है
वध रहित हो है सभी में आत्मा इतना गहन है ।
अकीर्ति को सव कहेंगे जगत में चीर काल तक
सज्जनों के लिये जो है मरण से मर्मान्तक ।
भीरु क्हेंगे महारथी निनदा करेंगे सामर्थ्य की
इससे अधिक संताप क्या तज तुच्छता अव व्यर्थ की ।
युद्ध सवसे श्रेयस्कर है उठ खडा हो कृत निश्चय
स्वर्ग मरकर जीतकर तु भोग धरती को धनंजय ।
लभ हानी जय पराजय और सुख संताप को
सम समझ कर युद्ध कर अप्राप्त होगा पाप को ।
यदि स्वर्ग की न चाह तो सम समझ सुख संताप है
फिर खडा हो युद्ध कर इसमें न कोई पाप है ।
अव सांख्य योग के वाद सुनो निष्काम कर्म की सुक्ति को
सव कर्म वंधन को करेगा पार इससे युक्त हो ।
इसक की तनीक सी साध से जीवन मरण का भय नहीं
आरम्भ का न नाश है फल दोष का संशय नहीं ।
निष्कामी की है वुद्धि केवल एक ही निश्चयातमक
पर सकामी का अनिश्चय अनन्त और भ्रमात्मक ।
स्वर्ग जिसका है प्रिय फल श्रुति की ही गर्ज है
एस सकामी पुरुष को केवल भोगना ऐश्वर्य है ।
वे विवेकी हैं नहीं पर शव्द शोभायुक्त है
इनसे हरे सव चित्तवाले भोग में आसक्त हैं ।
जो भोग में आसक्त है अन्तःकरण में पार्थ उनके
है नहीं निश्चय कोई मन में भरे हैं स्वर्थ उनके ।
वेद हैं प्रकाश करते त्रिगुणें के जगत को
इसलिये हे पार्थ सुन तु छोड इसके तत्व को ।
तुम वनों निर्द्वन्द और निर्योग क्षेम आत्मवान
तुम चिरन्तन सत्व में हो व्रह्मज्ञानी के समान ।
इसलिये मनुज को चाहिये मुझमे समाहित चित्त हो
स्थिर होती वुद्धि जिसकी इन्द्रियाँ संयमित हो ।
जितेन्द्रिय हो मन सहित जो है नहीं मेरे शरण में
हे पार्थ चिन्तन विषय का पर चल रहा अन्तःकरण में ।
इस तरह के मनन से है विषय की आशक्ति होती
फर विषय की कामना की पुरुष में उत्पति होती ।
कामना के विघ्न से फिर कोध का प्रकरण होता
कोध से अविवेक और भ्रमित तव स्मरण होता ।
विभ्रम से स्मृति के है वुद्धि का विनाश होता

DO NOT COPY

श्रेय से फिर पतित होकर मनुज का ही नाश होता।
जो स्वधीन अन्तःकरण का है राग द्वेष से दुर वह
हैं इन्द्रियाँ वस में विषय को भोगता भरपुर वह।
विषय में होते हुये अन्तःकरण में स्वचछता है
है नहीं जो इस तरह उसको नही प्रफुलता है।
सव दुखों का नाश है अन्तःकरण की स्वच्छता में
वुद्धि स्थिर है ऐसे पुरुष की पैसन्नता में।
हे पार्थ साधन रहित वुद्धि श्रेष्ठ भी होती नहीं है
नास्तिक वन फिर इस पुरुष को शान्ति नहीं है।
शान्ति में सुख सभी क्या अशान्ति में प्राप्त होगा ?
हर घडी ऐसा मनुज दुख दैन्य से ही आप्त होगा।
शान्ति सुख शान्ति सुख शान्ति में निहित है
दुख दैन्य दारुण है उसे जो शान्ति से रहित है।
इन्द्रियाँ ऐसे ही हरती आयुक्तों के वुद्धि मन
जिस तरह है हरण करता नाव को जल मे पवन।
जिस पुरुष की इन्द्रियाँ सव है नहीं जो भोग में
वुद्धि स्थिर है उसी की जो है अर्जन योग में।
सवके लिये जो है दिवस उसके लिये तो रात है
और रात है उसका दिवस परव्रह्म को जो प्राप्त है।
सव ओर से नदियाँ समाती महासागर की अचलता
ज्ञानी में जिस भोग भी पैदा नहीं करते विकलता।
वह पुरुष ही इस जगत में परम शान्तिमय वना है
वह नहीं हे पार्थ जिसको भोग की ही चाहना है।
स्नेह ममता अहं को और कामना को त्यागता है
पार्थ ऐसा पुरुष ही सुख शान्ति को जानता है।
मोह को नहीं प्रप्त होता जो नशीं है अहं में
अन्त में जाकर समाता है समर्पित व्रह्म में।
हे पार्थ सुन हे पार्थ उठ ले हाथ मे कृपाण को
निर्मोह हो फिर अन्त में तु प्राप्त हो निर्वाण को।

तृतिय अध्याय
कर्म योग

अर्जुन

क्यों लगाते है मुझे फिर इस भयंकर कर्म में
जव मानते हैं आप केशव ज्ञान को ही परम में ?
वचन से हे नाथ मिश्रित मोहित सा है ज्ञान मेरा
इसलिये कहिये वही जो कर सके कल्याण मेरा।

कृष्ण

हे पार्थ निष्ठा का यहाँ मैंने दिये दो नाम है
ज्ञान ज्ञानी को और फिर योगी को निष्काम है।
है नहीं निष्कर्म कोई कर्म को भी त्याग कर
न प्राप्त होता है परम को इस तरह से भाग कर।
मार्ग में कोई परन्तु कर्म का नहीं वर्जना है।
कर्म के आधार से ही इस जगत की सृजना है।
त्याग सकता है न कोई कर्म को फिर सर्वथा

DO NOT COPY

क्षण क्षण मनुज की नियति में है कर्म की अन्तर्कथा।
जो रोकता है ईन्द्रयों को मन है परन्तु भोग में
वह मुढवुद्धि पुरुष दम्भी है कहाता लोक में।
कमेन्द्रियों से कर्म करता आसक्ति की नहीं दृष्टि है
इन्द्रियों की डोर मन में ये पुरुष ही श्रेष्ठ हैं।
इसलिये तु कर्म कर तेरे लिये जो है निरुपित
अकर्म से हे पार्थ क्योंकि कर्म करना है समुचित।
कर्म जो न करोगे तो गात भी सकता नहीं चल
इसलिये तु युद्ध कर होकर यहाँ तु आज निश्चल।
है नहीं जो कर्म जिसका यज्ञ के ही लिये निश्चित
उस मनुज के लिये है कर्मवंधन पार्थ निर्मित।
इसलिये सव कर्म कर आशक्ति से तु रहित हो
हो तुम्हारा कर्म जो भी वह परम के निमित्त हो।
यज्ञ सहित रच मनुज को है यह कहा प्रजापति ने
कामना हो पुर्ण इससे वृद्धि हो श्री सम्पती में।
सुर मनुज मिल कर्म कर सभी है यही वरदान मेरा
उन्नयन फिर उन्नयन फिर हो परम कल्याण तेरा।
देंगे तुम्हे मांगे विना सव भोग प्रिय सुर भी
उनके दिये विन भोगता जो है मनुज वह चोर ही।
यज्ञ से जो वच गया खाता वही जो श्रेष्ठतम है
मात्र तन के लिये जो खाता वही निकृष्ठतम है।
पाप से वह मुक्त होता वच गया जो अन्न खाता
दुसरा पापी तो केवल पाप को खाता पकाता।
पैदा हुई है अन्न से ही इस जगत की सारी सृष्टि
अन्न होता वृष्टि से है यज्ञ से है होती वृष्टि।
देह से है बर्म पैदा कर्म से ही यज्ञ है
यज्ञ परम से इसलिये सुन यज्ञ में सर्वज्ञ है।
चलता नहीं है लोक में जो शास्त्र के अनुसार ही
वह पाप आयु जगत में है जी रहा वेकार ही।
संतुष्ट है जो आत्मा में आत्मा में तुप्ति होती
है नहीं कर्तव्य कोई आत्मा से तृप्ति होती।
क्रिया अक्रिया है वरावर कर्म केवल लोकहित में
है न कोई इस पुरुष का स्वार्थ इस सारे जगत में।
आशक्ति से तु रहित होकर कर निरन्तर कर्म को
फिर प्रप्त होता मनुज ऐसे उस चिन्तन परम को।
जनकादि जिससे प्राप्त हैं संसिद्धि को कर्मन्यता है
यदि लोक संग्रह देख तो भी कर्म की अहमन्यता है।
श्रेष्ठ हैं जिस आचरण में अन्य भी उस आचरण में
मील के पत्थर वही हैं जगत के जीवन मरण में।
हे पार्थ तिनों लोक में कुछ भी नहीं कर्तव्य मेरा
है नहीं अप्राप्त कुछ पर कर्म में ही है वसेरा।
चलते सभी उस मार्ग पर जिस पर चला हुँ मैं कभी
जो कर्म को मैं त्याग दुँ तो है वडी हानि तभी।
यदि कर्म में मैं ना रहुँ तो भ्रष्ट होगी मनुष्यता ही
हनन है प्रजाजनों का उत्पन्न है पथभ्रष्टता ही।

DO NOT COPY

कर्म जो अज्ञानी करता जिस तरह आशक्त हो
आशक्ति से हो हित वैसा ज्ञानी का भी व्यक्त हो ।
उस पुरुष को रोक मत आशक्त हो जो कर्म करता
चाहिये ज्ञानी न उसमें जा करे पैदा अश्रद्धा ।
प्रकृति केल गुणों से हर काम है सम्पन्न होता
भाव कर्ता का परन्तु अहं से उत्पन्न होता र
गुण कर्म विभाग के तत्व जो ज्ञान योगी जानते हैं
सोच न आश्क्त होता गुण गुणें में वर्तते हैं ।
गुण कर्म में आशक्त है स्वभाव से जो मन्दवुद्धि
मत करे विचलित उन्हे जिनको मिला हो पुर्ण सिद्धि ।
आशा ममता संताप से तु दुर होकर युद्ध कर
मुझमें समर्पण कर्म सव अन्तःकरण को शुद्ध कर ।
दोष दृष्टि से रहित हो और श्रद्धायुक्त हो
इस मार्ग पर जो भी चले जाते कर्म से मुक्त हो ।
चलते नहीं एस मार्ग पर जो दोष दृष्टि को लिये हैं
मुर्ख मोहित ज्ञान में वे नष्ट अपने को किये हैं ।
जो मिली है हर किसी को ज्ञानियों को भी वहीं
यह प्रकृति का झमेला कुछ करेगा हठ कहीं ?
इन इन्द्रियों में जो छिपे विद्वेष और अनुराग है
उनके नही हो वस मनुज वे घ्नि तेरे मार्ग हैं ।
गुण रहित भी निज धर्म परधर्म से उत्तम अति है
है भयावह दुसरा निज धर्म से ही सद्‌गति है ।

अर्जुन

खुद नहीं है चाहता पर पाप की अवधारणा है
कौन है वह मनुज को जो दे रहा यह प्रेणा है ?

कृष्ण

काम ही है क्रोध इसका रजस से उद्‌भव हुआ है
यह वडा पापी अघाना न भोग से सम्भव हुआ है ।
पार्थ यह तु जान लो वैरी यही है इस विषय में
कर रहा सवारी यही पाप करने के समय मे
मैल से दर्पण ढका है जेर से शिशु जान ज्यों
धुम्र से अग्नि ढका ज्यो काम से या ज्ञान त्यों ।
इन्द्रियाा मन और वुद्धि काम के स्थान सव
मोहता है जीव ढककर जो इन्ही से ज्ञान सव
मार निश्चय काम को कर इन्द्रियाँ अधिकार में
नष्ट करता है जो पापी ज्ञान को संसार में ।
देह से हैं इन्द्रयाा और इन्द्रायें से मन वडा रे
वुद्धि मन से वुद्धि से मन मन से परे अति आत्मा रे ।
वुद्धि से पर आत्मा तु जान इस प्रकार रे
मार दुर्जय काम को मम पर किये अधिकार रे ।

चौथा अध्याय
ज्ञान कर्म सन्यास योग

कृष्ण

मैंने कहा था सुर्य से इस योग को जो शाश्वत है

सुर्य ने मनु से और इक्ष्वाकु को वैवश्त है।
प्रात था राजर्षियों को हे परंतप परम्परा से
वाद में चीर काल तक यह लुप्त था किन्तु धरा से
वह पुरातन योग ही मैंने कहा है अव सखा
भक्त हो प्रिय सखा हो यह विषय है मर्म का।

अर्जुन

आपका तो हुआ केशव जन्म अवाचीन है
कैसे कहा था सुर्य से जा अति प्रचीन है ?

कृष्ण

तु नहीं पर जानता मैं जन्म तेरे और मेरे
हो चुके जो जगत में है परंतप हे वहुत से रे।
ईश हुँ सव प्रषिणें का मैं अजन्मा नाशहीन
योगमाया से प्रकट पर कर प्रकृति को अधीन।
जव जव धर्म की हानि होती अधर्म की वृद्धि जभी
जगत में सृजन किया निज रुप का मैंने तभी।
पापियौं के नाश युग युग साधुओं के त्राण मे
धर्म की स्थापना में हुँ सृजता प्राण मैं
जनता है ततव से जव इस हमारी दिव्यता को
प्राप्त होती है मुझे फिर त्याग तन लौकिकता को।
जन्म लेता है नहीं फिर जगत में तन त्याग से
दुर है जो सर्वथा भय कोध और अनुराग से।
अनन्य भक्ति भाव से थे पुर्व भी मेरे शरण में
ज्ञान से वे हो अछुता हैं हमारे आवरण में।
सव तरह से मनुज अर्जुन है हमारी राह में
भजन जिसका जिस तरह है उस तरह की छाँह में।
पुजता है देव को जो कर्मफल को चाहता है
शिघ्र मिलती लोक में पार्थ उसको सफलता है।
पर नहीं हैं जानते वे तत्व से मुझको कभी
इसलिये तु भज मुझी को त्याग कर तृष्णा सभी।
युग कर्म के अनुसार मैं ही वर्ण को रचता जहाँ
जानलो हे पार्थ मुझको पर अकर्ता ही वहाँ।
नहीं कामना परिणाम की नहीं कर्म से ही हुँ वँधा
जो जानता है इस तरह वह मुक्त ही है सर्वदा।
मुमुक्षु जग में कर चुके हैंजानकर जो सर्वदा
है पुर्वजों का कर्म जो भी वह तुम्हारी सम्पदा।
भ्रमित हैं वुद्धिमति भी कर्म क्या है क्या नहीं ?
जिससे अशुभ से मुक्त होगा मैं कहुँगा ही वही।
कहुँगा मैं भलिभाँति जानकर जिस तत्व को
कर्म वंधनमुक्त हो तु प्राप्त होगा सत्व को।
अकर्म का स्वरुप क्या है कर्म की है क्या गति ?
विकर्म क्या क्या जगत में तु समझना हे संतति।
कर्म अकर्म में अकर्म कर्म में जो देखना है
कर्म करता है सभी वह मनुज में वुद्धमना है।
कर्म में है व्यस्त कोई कामना पर है नहीं
ज्ञानाग्नि से है दग्ध जिनके कर्म पंडित है वही।

DO NOT COPY

है नहीं करता वही कुछ कर्म में प्रवृत होकर
तज कर्मफल संग है जो परम में ही तुप्त होकर ।
तज दिया सुख भोग जो मन इन्द्रियाँ तन विजित कर
है वह नहीं दुष्कर्म जो तन के लिये आशा रहित पर ।
संतुष्ट है जो भी मिला इच्छा नहीं इर्ष्या नहीं
निर्द्वन्द सम सिद्धि असिद्धि कर्म योगी है वही ।
आशक्ति ममता रहित जिनके चित्त परम में लिन है
जो यज्ञ के ही लिये हैं वे कर्म सव विलीन हैं ।
कर्ता वहाँ है व्रह्म रे जिस यज्ञ की चर्चा यहाँ
जो भी जुडा उस व्रह्म से है परम व्रह्ममय ही वहाँ ।
योगीजन करते यहाँ कुछ यज्ञ जो है देवपुजन
यज्ञ द्वारा यज्ञ को कुछ व्रह्म में करते हवन ।
संयामाग्नि में हवन करते श्रोत्र आदि इन्द्रियों को
इन्द्रियाग्नि में योगी पर कुछ शव्द आदि विषयों को ।
करते हवन कुछ इन्द्रियों को आत्म संयम में परन्तु
ज्ञान से प्रदीपत जो है हैं उसी में प्राणतंतु ।
यज्ञ करते द्रव्य से कुछ कुछ तपस्या में विलीन
योग ही है यज्ञ कुछ को कुछ मनन में हैं प्रवीण ।
प्राण अपान में अपान प्रण में कोई किये
प्राण अपान रोक कोई प्रणयामी हैं हुये ।
प्राण में जो ये वनाते प्राण ही को तो हवि
नियम से आहार जिनके पार्थ योगी ये सभी ।
ये सभी हैं यज्ञ और यज्ञकर्ता ये सभी
जानते हैं यज्ञ को जो पापहन्ता ये सभी ।
प्राप्त होते हैं परम को यज्ञ का अमृत पाकर
वंचितों को क्या मिलेगा लोक से परलोक जाकर ?
जव दुखद यह लोक है कैसे सुखद परलोक होगा ?
पार्थ ऐसे मनुज को चीरकाल कातर शोक होगा ।
वहुत से हैं यज्ञ जिका वेद में विस्तार है
कर क्रिया सम्पन्न होता मनुज जो भवपार है ।
यज्ञ सम्पन्न हें यहाा मन और तन के कर्म से
निष्काम मे जा मुक्त होगा जान इनको मर्म से ।
ज्ञान यज्ञ से हे परंतप द्रव्यमय अति ही लेश है
सव कर्म यावन्न मात्र होते यज्ञ मे ही शेष हैं ।
इस ज्ञान को तु समभ जाकर तत्वदर्शी आत्मा से
तत्व का उपदेश देंगे जो लीन हैं परमात्मा से ।
पुछना पर मर्मियों से सेवा और प्रणिपात से
तव खुलेंगे द्वार उनके निष्कपट संघात से ।
जानकर इस तरह फिर ना मोह से आंछन्न होगा
सव भुत निज में और मुभमें देखना सम्पन्न होगा ।
क्या मिलेगा पार्थ जग में इस तरह है विकलता जो ?
ज्ञान के प्रकाश से पा परमपद की शितलता को ।
जगत में इन पापियों से अधिक पापी भी अगर तु
ज्ञान नौका से तरेगा पाप सिन्धु भी मगर तु ।
जिस तरह प्रज्वलित अग्नि भष्म करती ईंधनों को

DO NOT COPY

ज्ञान अग्नि उस तरह ही कर्म के सव वंधनों को।
पवित्र कर्ता ज्ञान से वढकर नहीं संसार में है
कर्मयोगी को मिला जो अन्तःकरण के द्वार में है।
जितेन्द्रिय तत्पर श्रद्धा से ज्ञान उसको ही फला है
ज्ञान को कर प्रप्त तत्क्षण परम शान्ति को मिला है।
विवेक श्रद्धा है नहीं संशय लिये जो है यहाँ
परमार्थ से वह भ्रष्ट है फिर क्या मिलेगा ही वहाँ ?
ऐसे सशंकित मनुज जग में मोह से जो ग्रस्त हैं
वे लोक मे परलोक में दुख दैन्य से संत्रस्त हैं।
परमात्मा में कर्म को जिसने समर्पित कर दिया
ज्ञान से हे पार्थ जिसने नष्ट संशय को किया।
वह पुरुष निर्वंध जग में है कर्म के पाश से
अन्तःकरण उसका सुवासित ज्ञान कर्म सन्यास से।
भेद संशय भरतवंशी ज्ञान का करवाल ले
हो खडा इस समर मे रे तु कर्म का ढाल ले।

पाँचवा अध्याय
कर्म सन्यास योग

अर्जुन

संयास में निष्काम में जिनकी यहाा स्थिति है
कहिये वही हितकर हमे हे कसष्ण जो निश्चित है।
करते प्रसंशा नाथ पर है कौन उपयोगी हमे ?
ले कर्म का संयास या फिर कर्मयोगी ही वने ?
मैं करुंगा ही वही मेरे लिये जो भी विषय है
कर्म मैं संयास में कहिये वही जो वात तय है।

कृष्ण

है उभय कल्याणकारी पर श्रेयस्कर तो कर्म है
पार्थ क्यांकि जगत में कर्म ही साधन सुगाम है।
आकांक्षा जिसमे नहीं जिसमें नहीं विद्वेष है
वह कर्मयोगी ही लिये सन्यास का संदेश है।
आकंक्षा विद्वेष से हो रहित जो निर्द्वन्द है
सुख शान्ति सुख शान्ति रे मुक्त उसका वंध है।
वे मुर्ख हैं पंडित नहीं जो मानते पृथक भले
सन्यास में परमात्मा तो कर्म में भी वह फले।
सम्यक किसी भी एक में परमात्मा से मिल गया
वह कर्म जो निर्द्वन्द है सन्यास मे घुलमिल गया।
फलरुप में जो एक देखे देखता यथार्थ है
रे ज्ञानियों निष्कामियों का एक ही परमार्थ है।
है ज्ञानयोगी प्राप्त करता जिस परम के धाम को
तो कर्मयोगी भी यहाँ जाते उसी सुरधाम को।
है भाव कर्ता का यहाा सन्यास में जो त्यागना रे
है कठिन वह प्राप्त करना विन कर्मयोगी वना रे।
परव्रह्म को पर प्राप्त होता कर्मयोगी जल्द है
मन परम परमात्मा तन कर्म ही का गंध है।
इन्द्रियो से विजित है परमात्मा ही आत्मा है

DO NOT COPY

निर्लिप्त है वह कर्म में जो योगयुक्त शुद्धात्मा है ।
सुनता स्पर्श करता सुँघता खाता हुआ
श्वाँस दृष्टि गमन मेंजव वोलता सोता हुआ ।
त्याग ग्रहण चक्षुओं को खोलता मुँदता हुआ
इन्द्रियों के अर्थ ज्ञानी कुछ नहीं फिर भी किया ।
यह सव हुआ वह सव हुआ रे पर हुआ कुछ भी नहीं
वह सांख्ययोगी तत्वदर्शी जानता है रे यही ।
कर्म है परमात्मा में है विरक्ति कर्मफल में
पाप से वे हैं विलग ज्यो पद्म पत्ते सरित जल में ।
कर्म में पर है लगाता मन इन्द्रियाँ तन वुद्धि को
निरासक्त ममता रहित योगी अन्तःकरण की शुद्धि को ।
कर्मफलको त्यगता जो परम सुख उसको सधा है
कामना है जिस किसी में रे वही जग में वँधा है ।
अन्तःकरण वस में जिन्हे रे सांखय का ही आचरण है
नवद्वार के तनगृह में अनन्दघन में विचरण है ।
हे पार्थ है परमात्मा कुछ भी नहीं रचता यहाँ
रे कर्म कर्ता कर्मफल स्वभाव से होता यहाँ ।
शुभ अशुभ ग्रहण नहीं है सर्वव्यापी से किसी का
ज्ञान मायाछन्न मन व्यामोह में है रे सभी का ।
जिस ज्ञान ने अज्ञान जिनका कर दिया है नाश रे
वह ज्ञान रश्मि परमपथ में सुर्य का प्रकाश रे ।
तद्रुप मन वुद्धि परायण आनन्दघन में स्थिति है
पाप रहित जो ज्ञान से मिलती उसी को सद्गति है ।
विद्या विनय सम्पन्न द्वीज हस्ति श्वपच और श्वान में
समभाव में जो भी यहाँ संसार उससे विजित है
आनन्दघन निर्दोष सम आनन्दघन स्थित है ।
अप्रिय से दुख कुछ नहीं प्रिय प्राप्ति हर्षित नहीं
स्थिरवुद्धि व्रह्मवेत्ता व्रह्म में स्थित वही ।
निरासक्त वाह्य विषय में है ध्यान का आनन्द पाता
पश्चात प्रभुयोग में हो अभिन्न परमानन्द पाता ।
इन्द्रियाँ विषय के योग से वनकर खडा जो भोग है
सुख भोगी को लगता भले वह आदि अन्त का रोग है ।
आदि अन्त कौन्तेय उसका सर्वदा रहता नहीं
इसलिये उसमें विवेकी रे कभी रमता नहीं ।
वह सुखी योगी वही जव तक यहाँ यह मर्त्य है
कोध काम संवेग सभी रे सहने को सामर्थ्य है ।
अन्तरात्मा में ज्योती सुख है रमण जिसका आत्मा में
सांख्ययोगी वह मिला है शान्तव्रह्म परमात्मा में ।
जो नष्ट कल्मष छिन्न संशय सवभुत के कल्याण में
एकाग्र चित्त रे जो भी वही रे है गया निर्वाण में ।
काम कोध से रहित है चित्त विजित है संसार में
परव्रह्म से साक्षात कर है शान्त अपरम्पार में ।
फेंक वाहर भोग दृष्टि भृकुटी के वीच कर
नासिकाग्र स्थित प्राण अपान सम में खींच कर ।

DO NOT COPY

छठा अध्याय
आत्म संयम योग
कृष्ण

कर्म यागी वह नहीं संसार से जो भागता है
कर रहा कर्तव्य फल को जो नहीं पर चाहता है।
हे पार्थ संयासी और संसार में गोगी वही है
अनल केवल त्यागता वह कभी वैरागी नहीं है।
वह कभी योगी नहीं त्यागे न जो संकल्पना
हे पार्थ इस संयास में है योग की ही संभ्फना।
इच्छा लिये अन्तःकरण में योग में आरुढ होना
उस मुनि का हेतु है निष्काम में ही दृढ होना।
संकल्प का जो त्याग योगारुढ होन पर हुआ है
कल्याण में हेतु वही हे पार्थ जगती में कहा है।
ना भोग में ना कर्म में जिस काल में संवद्ध है
उस काल मै संकल्प त्यागी योग से सन्नद्ध है।
आप ही रिपु है और हे आप ही सहचर यहाँ
अवसाद में न डाल स्वयं कर पार भवसागर यहाँ।
मन इन्द्रियाँ तन से विजित जिवात्मा उसका अरि
मन इन्द्रियाा तन विजित तो रे आत्मा है सहचरी।
सर्दी गर्मी अपमान मान जो सुख दुख में निशान्त है
उस ज्ञानवान के ज्ञान में प्रवेश प्रभु प्रशान्त है।
प्रस्तर मिट्टी कंचन सभी रे हैं समान जिनके लिये
अन्तःकरण को तुष्ट ज्ञान विज्ञान से जो है किये।
विकार रहित है स्थिति हैं इन्द्रियाा जीती हुई
हे पार्थ योगी की ही ऐसे परम की प्राप्ति हुई।
सुहृद वैरी वंधु सखा धर्मात्मा पापिष्ठ में
मध्यस्थ द्वेषी उदासीन में जो समान अति श्रेष्ठ हैं।
मन इन्द्रियों के साथ में तन विजित है उपरान्त में
परमात्मा में त्याग कर वे आत्मा एकान्त में।
कुशा और मृगचर्म वस्त्र पवि भुमि पर क्रमशः विछे हों
आसन अचल स्थापना कर जो न अति उँचे निचे हो।
एकाग्र मन योगी वही रे वैठ कर आसन जमाये
वस करे अन्तः पवि में इन्द्रियाँ मन की क्रियायें।
हों व्रह्म ग्रीवा और काया धारण अचल स्थिर समान
दिक में न दृष्टि दुसरा नासिकाग्र में चक्षु कमान।
हो सावधान निर्भय प्रशान्त मेरे परायण दत्त चित्त हो
मन रोक व्रह्मचारी व्रती मेरे ही मेरे में स्थित हो।
इस तरह मन रोक जिसकी आत्मा मुझमें घुली है
मुझमे वसी जो चरम शान्ति जो उसी को ही मिली है।
होगी न सिद्धि योग की जो अधिक उपवासी यहाँ
भक्षी अति तन्द्रिल अनिन्द्रित योग अभ्यासी जहाँ।
तार वीणा के कसे हों और ढीले हो जहाँ
क्या मिले संगीत उससे क्या सुरीले हो वहा ?
तार वीणा के कसे ना और ढीले हों नहीं
फुटते संगीत उससे तव सुरीले ही वही।

DO NOT COPY

इस योग की सिद्धि तभीजो नाश करती है व्यथा
विहार आहार निन्द्र अनिन्द्राहो कर्म चेष्टा भी यथा ।
चित्त विनियत जिस काल में परमात्मा स्थित होता
निस्पृह जो सव भोग में यस काल से र्हा युक्त होता ।
है कही गयी उपनाम यही रे ज्यों निवात दीपक वाती
है परम ध्यान में योगी के जिता चित्त स्थिर उस भाँति ।
निरुद्ध चित्त जो योग से है हो गया निवृत जव
ध्यान दृष्टि से दरश रहता उसी में तृप्त जव
इन्द्रियाँतीत अनन्त आनन्द जो जव ध्यान से अनुभुत होता
जिस अवस्था में न योगी फिर परमपद च्युत होता ।
वढकर नहीं है लाभ कुछ परमात्मा संप्राप्ति से
जिस दशा स्थित विचलित योगी नदु:सह विपत्ति से
जान उसको आदमी जिसमें न दुखसंयोग है
धैर्य चित्त से कर उसे जो आत्मसंयम योग है ।
संकल्प से जो कामना सव त्याग कर नि:शेष से
मन से इन्द्रिय ग्राम रोक उनके सभी निवेश से
शनै: शनै: योगी सभी रे उपरति में जा समाना
धीर वुद्धि से परम मन हो नहीं चिन्तन विराना ।
अवरुद्ध कर उन विषयों से जहाँ मन गाये तराना
वारवार परमात्मा में चंचल अस्थिर को लगाना ।
प्रशान्त मन निष्पाप है जो जव रजोगुण शान्त है
व्रह्म के जो साथ एकी वह नहीं दुखक्लान्त है ।
सुख है उसे उत्तम मिला है ही नहीं दुख क्लान्ति
आननद घन परमात्मा में शान्ति विश्रान्ति ।
सर्व व्यापी अननत चेतन स्थित अनन्य योग जो
युक्त ऐसी आत्मा से हैं समदर्शी लोग जो ।
आत्मा निष्पाप योगी परम में ऐसे लगाकर
व्रह्म संप्राप्ति स्वरुप पाता अनन्त आनन्द जाकर ।
योगी के लिये उस आत्मा सम्पुर्ण भुतों में है स्थित
और है सम्पुर्ण भुत आत्मा में ही विकल्पित ।
सव भुत में मैं वे मुझी में होता है जिसको दृष्टिगोचर
मैं नहीं और वह नहीं रे एक दुजे को अगोचर ।
जो अननय भाव से भजे मुझ आत्म रुप को सभी में
सव तरह से वरतता वह योगी वरतता है हमी में ।

अर्जुन

यह समत्व योग है जो आपका कहना यहाँ
मन चुँकि चंचल अति स्थिर ठहरना है कहाँ ?

कृष्ण

हे पार्थ मन को शमित करना नि:संदेह दु:साध्य है
वैराग्य और अभ्यास से पर यह नहीं अप्राप्य है ।
है मेरा मत जो असंयत योग यह दुष्प्राप्य है
निग्रही तत्पर पुरुष को सहज साधन प्राप्य है ।

अर्जुन

संयम विना श्रद्धा सहित पर योग से विचलित मति को
योग संसिद्धि नहीं तो प्रप्त होता किस गति को ?

DO NOT COPY

नष्ट तो जाते नहीं हो भ्रष्ट दोनों ओर से त्यों
छिन्न भिन्न होकर विखरता मेघ अपनी ठौर से ज्यों ?
आप ही हैं नाथ छेदन कर सके संशय यहाँ
आप जैसा दुसरा लिना नहीं सम्भव यहाँ ।
आप जैसा दुसरा मिलना नहीं सम्भव हुआ है
कौन है हे कृष्ण जिसका इस तरह उद्‌भव हुआ है ?

कृष्ण

परलोक लोक में न नष्ट पार्थ उसकी सद्‌गति है
कर्म है कल्याण जिसका न तात उसकी दुर्गति है ।
योग से जो भ्रष्ट पाते स्वर्ग आदि लोक जाकर
फिर कुलीन घर में जन्मते स्वर्ग में वर्षो विता कर ।
अथवा नजाकर लोक में उन योगी कुल पैदा हुआ है
पर जन्म यह लोक में दुर्लभ सदा सदा हुआ है ।
अनायास संयोग संग्रह पुर्व के मिलते उन्हे
साधते वढ कर दुवारा परम में वढकर जिनहे ।
परवस हुये भी विषयों में खिंचते हैं योग में
करते उलंघन वेद वर्णन कर्मफल संयोग में ।
होता यहाँ पर यह सभी रे पुर्व के अभ्यास से
योग के अभ्यास सुन्दरपुर्व के इस न्यास से ।
पर जगत में पार्थ है रे वहुत से जिज्ञासमान
कर्मफल में कर्म उनके कुलीन योगी के समान ।
प्रयत्न से जो साधना हैं संसिद्धि इसी जीवन में
पुर्व के संस्कार वल सव मिलते लोकायतन में ।
दुर हो सव किल्विसों से वेपरम के पुर जाते
आवागमन जीवन मरण से इस तरह वे दुर जाते ।
योगी वनो हे पार्थ मेरे योगी सभी में श्रेष्ठ हैं
शस्त्रज्ञ तपसी और जितने कामना कर्मिष्ठ हैं ।
श्रेष्ठतम है मान्य वह जो निरन्तर मुझमें लगा है
योगियों में भी हमारे भाव श्रद्धा से पगा है ।

सातवाँ अध्याय

ज्ञान विज्ञान योग

कृष्ण

विभुति वल ऐश्वर्य सवसे पुर्ण हुँ मैं हे धनंजय
अव सुनो वह मर्म कैसे निहित है मुझमें अशंसय ।
जिससे अनन्त प्लुष अनन्त भावना से तु पगेगा
योग में आशक्त मेरे में परायण हो सकेगा ।
जानने पर शेष उसको कुछ नहीं पश्चात होगा
ज्ञान वह सम्पुर्णता से सारगर्भित तात होगा ।
जनने पर शेष उसको कुछ नहीं अज्ञान होगा
तात इसका नाम जग में ज्ञान और विज्ञान होगा ।
प्रयत्न करता सहस्त्रों में एक कोई पार्थ मेरे
उन सहस्त्रौं में कोई ही जानता यथार्थ मेरे ।
आठ भागों में विभाजित है हमारी प्रकृति
गगन वायु नीर अग्नि अहं मन वुद्धि क्षिति ।
ये हमारी जड प्रकृति दुसरी है चेतना

DO NOT COPY

जीरुपा जान जिमें जगत की स्थापना ।
ऐसा समझ इनसे यहाँ सब भुत का उद्‌भव हुआ है
मैं जगत का मुल मुझसे प्रलय और प्रभव हुआ है ।
सब भुत हैं उद्‌भुत इनसे तात ऐसा समझना है
मैं प्रभव प्रलय जगत का ये मेरी अभिव्यंजना हैं ।
मणि में मणिसुत्र में जैसे पिरोया है यहाँ
मेरे सिवा नहीं दुसरा मुझमें पिरोया है जहां ।
नाद नभ पौरुष पुरुष का वेद में ओंकार हुँ
शशि सुर्य में प्रभाश अर्जुन नीर में रसधार हुँ ।
मैं तपोरत में हुँ तप पवि गन्ध अवनि में हुआ हुँ
जिन्दगी सव प्राणियों में तेज अग्नि में हुआ हुँ ।
मैं मति वुद्धिमतों का तेजस्वियों का तेज हु
ऐसा समझ हे तात मेरे मैं सनातन वीज हुँ ।
आशक्ति हुँ वलवान की वल कामना के पार हुँ
रे धर्म के अनुरुप भुतों में मदन अवतार हुँ ।
त्रिगाुणें की भावना सव जान मुझसे हो रही
पर सही में मैं हुँ उनमें और वे मुझमें नहीं ।
त्रिगुणों की भावना से मोह में संसार सारा
जानते इससे नहीं वे तत्व अविनाशी हमारा ।
अद्‌भुत हमारी त्रिगुणी दुस्तर अति दुस्वार है
जो भजे मुझको सदा करता वही भव पार है ।
ज्ञान जिसका हर लिया त्रिगुणमयी माया हमारी
जो लिये हैं भाव आसुर नर अधम दुष्कर्मकारी
भजते नहीं तो वे मुझे किंचित कभी संसार में
वे मोह से आछन्न रहते हैं सदा भवधार में ।
अर्थार्थी ज्ञानी मुमुक्षु और जो भी आर्त हैं
रे भजन करते हमारा ये सभी ही पार्थ हैं ।
पर ज्ञानी है उत्तम प्रिय हम एक दुजेको प्रिय
जो तत्व से है समझ करता प्रेम भक्ति से हिय ।
ये अनोखे है सभी ज्ञानी परन्तु रुप मेरा
है मेरा मत भक्त मद्‌गत जो मुझी में ही वसेरा
जन्म जन्म के अन्त में जवज्ञानी का जिस जन्म होगा
उस पुरुष को जव जगत में प्रप्त मेरा मर्म होगा ।
वसुदेव ही सव मानकर वह पुरुष जव मुझको भजेगा
संत वह अत्यन्त दुर्लभ युग युगों में ही मिलेगा ।
वोध जव जग में चुराये भिन्न जिनकी कामनायें
देव पुजन अनय नियमन है सहज ही प्रेरणायें ।
देव का जिस जिस भजन रे चाहता जो जो जभी जव
उस अमर में स्थगन करता हुँ मैं श्रद्धा सभी तव ।
पुजते उस देख को हो इस तरह श्रद्धान्वित वे
मुझसे विधित सुर से उसी पाते हैं फल वांछित वे ।
हैं वे नश्वर फल परन्तु अल्पवुद्धि का यहाँ
उस देवता को प्राप्त होते देव भक्ति है जहाँ ।
पर भक्त मेरे प्रप्त होते अन्ततः मुझको सभी
चाहे भजे वे भक्त मेरे जो जहाँ जैसे जभी ।

DO NOT COPY

परम परे मन इन्द्रियों से शाश्वत सत्ता हमारी
जानता निर्बोध है न यह यह न अनुमत्तता हमारी।
परम परे मन इन्द्रियों से है अनुत्तम शाश्वत है
न जानकर मैं जन्मता हुँ मानते जो वुद्धिहत हैं।
इसलिये वह मानता है जन्म कर मैं व्यक्त हुँ
जनता है वह नहीं रे मैं सदा अव्यक्त हुँ।
योग से आवृत सवके सामने आता नहीं
इसलिये जो मुढ मेरे तत्व को पाता नहीं।
मैं जन्मता और मरता इसलिये वह मानता है
वत्स मेरे इस जगत में मुढ की अज्ञानता है।
वे जानते मुझको नहीं पर जानता हुँ मैं चराचर
जो व्यतित हैं उपस्थित हैं और जो होंगे धरा पर।
द्वन्द का मुर्छा लगा है द्वेष और इच्छा जगे हैं
भरतवंशी सुख दुखों से अज्ञता में सव पगे हैं।
पर द्वन्द मोह मुक्त निश्चय दृढ होक पुण्यकर्मा
सव तरह भजते मुझे वे पापहत जो भावधर्मा।
जरा मरण के मोक्ष का जो शरण मेरे आ गये
वे व्रह्म दर्शन कर्म को सम्पुर्णता से पा गये।
अधिदेव अधिभुत और अधियज्ञके जो भी सहित है
अन्त में मुझसे परिचय वह मुझी में समाहित है।

आठवाँ अध्याय

अक्षरव्रह्म योग

अर्जुन

अधिभुत क्या अधिदैव क्या वह व्रह्म दर्शन कर्म क्या है ?
हे नरोत्तम इन सभी का मर्म क्या है ?
अन्त में होता तुम्हारा ध्यान कैसे ?
कौन है अधियज्ञ तन में है यहाा पहचान कैसे ?

कृष्ण

अध्यात्म है जीवात्मा अक्षर परम ही व्रह्म है
भुत भावोद्भुत जिससे वह विर्जन कर्म है।
हिरण्यमय जो भी पुरुष हैं वे सभी अधिदैव हैं
अधियज्ञ वन तन में समाया हम सदा वसुदेव हैं।
अधिभुत हैं वे भुत जो संहार सृजन को लिये
खेल अपना इस जगत में ही विसर्जन कर दिये।
स्मरण करता ही मुझे जो भी वदलता है कलेवर
साक्षात मुझको प्राप्त है संशय नहीं हे देहवर।
जिस भाव का चिन्तन सदा रहता हमारे ध्यान में
उस भावना के भाव में रहता मनुज प्रयाण में।
इतना नहीं वह भावना प्रयाण के भी पार जाता
इसलिये चोला वदल कर मनुज उसमें ही समाता।
इसलिये सव काल मुझको अनवरत स्मरण करना
युद्ध भी अर्पण मति मन से हमारा वरण करना।
योग के अतिरिक्त कोई जो नहीं हो अन्य चिन्तन
दिव्य रश्मि मम पुरुष ही है मिला उनको चिरन्तन।

DO NOT COPY

आदि अविद्यया से परे आनन्द घन परमेश्वर
सर्वत्र सम रश्मि रवि अचिन्त्य चेतन सुक्ष्मतर ।
सवका नियंता है सभी का कर रहा धारण भरण
हे पार्थ ऐसी दिव्यता का कर रहा जो स्मरण ।
भृकुटी के मध्य सम्यक प्राण को स्थित कर
प्रयाण में वलयोग से हे देहवर वह भक्तवर ।
वह स्मरण करता हुआ मन अचल से दिव्यात्मा ही
जो मिला उसको वही है नर परम परमात्मा ही ।
अक्षय कहते वेद विदवितराग का प्रवेशना है
मैं कहुँ संक्षेप में जो व्रह्मचारी तृष्णा है ।
हो इन्द्रियो के पार चेतन मन हृदय स्थापना
हो व्रह्म में जो प्राण स्थित योग की हो धारण ।
वस ओम ही हो ओम रटना व्रह्म की हो भावना
त्याग कर जाता वदन तो मोक्ष में स्थापना ।
मैं सहज हुँ मैं सुलभ हुँ जो निरन्तर युक्त हो
स्मरण करता सदा अनन्य चित्त निर्मुक्त हो ।
परम सिद्ध प्राप्त मुझको प्राप्त जो भी महात्मन हैं
है नहीं दुख लोक उनको जो क्षणिक आवागमन है ।
आव्रह्म भुवन पुनरागमन में पार्थ प्रभव में सभी ।
पर नहीं कौन्तेय वह जो प्राप्त प्रणव को जभी ।
हैं वँधे सव काल से रे है वँधा यह काल भी
काल कालातीत हुँ रे मैं वँधा हुँ क्या कभी ?
विधि का सहस्त्र चौकणी दिन और उतनी रात है
जानते जो इस तरह वे काल के अभिजात हैं ।
निकल कर प्रभात में अव्यक्त से सव व्यक्त आते
रात्रि प्रवेश में हो लीन उसमें ही समाते ।
हैं वही ये भुतगण जो आ रहे और जा रहे
रात्रि में लीन दिन में ये पुनश्च आ रहे ।
निज प्रकृति संग यह सौ वर्ष के पर्यन्त होता
फिर समेट कर सभी पितृपति का अन्त होता ।न
नाश होता है सभी का पर नहीं वह दिव्यता
अव्यक्त से अव्यक्त अद्‌भुत जो सनातन दिव्यता ।
मुक्ति वही रे है परम अव्यक्त अक्षर नाम है
पाकर मनुज वापस नहीं वह पदपरम मम धाम है
व्रह्म अक्षर योग है रे व्रह्म यही रे व्रह्म है
श्रवण ओम ओमकार में जो भाव वही परव्रह्म है ।
है चराचर निहित जिसमें यह जगत जिससे भरा
है मिला उसको परम जो प्रेम भक्ति वाँवरा ।
वह इसी के योग्य है रे वह सनातन दिवय है
वह पुरुष अव्यक्त अर्जुन वह परम पद अव्यय ।
योगी लौटते मार्ग जा जिस जिससे पुनः आते नहीं
प्रयाण के दो पंथ उनके अव कहुँगा मैं वही ।
जिसमें अनल दिन शुक्ल सुर अर्धवर्ष का सुर उत्तरायण
व्रह्म विद जो व्रह्म में उस मार्ग में होते परायण ।
सकाम योगी स्वर्ग में जा भोग फल आते पुनः

DO NOT COPY

दुसरा जो मार्ग है उसमें मिलन है फिर विरह ।
मार्ग जिसमें है सुर रात्रि धुमाभिमानी
कृष्णपक्ष दक्षिण अयन का देवता आत्माभिमानी ।
प्रयाण के दो मार्ग सनातन देव पितृ यान के
एक लाता है पुनः दुजा परम प्रस्थान के ।
इसलिये मत्कर्म से हो युक्त मेरी साधना में
जानते जो पंथ दो हैं नहीं वे कामना में ।
वेद यज्ञ तप दान और जो पुण्य के व्यापार हैं
मर्मयोगी पर यहाँ उनको भी करते पार हैं ।
पर कर जाते परम पद वे समाते हैं परम पद
परम पद जाते समाते और वन जाते परम पद ।

नौंवा अध्याय
राज विद्या राज गुह्य योग
कृष्ण

तुझ दोष दृष्टिरहितको अव मैं कहुंगा
ज्ञान वह विज्ञान के ही सहित होगा ।
इस तरह जिस रहस्य से संयुक्त होगा
जानकर संसार से तु मुक्त होगा ।
राजा सभी विद्यायों का राजा रहस्यों का सभी
धर्मयुक्त उत्तम अति प्रत्यक्ष फलदायक पवि ।
श्रद्धारहित जो पुरुष उसमें यह धर्म जो उल्लिखित है
मुझको नपाकर मृत्यु रुप संसार में ही भ्रमित है ।
है अनश्वर पार्थ यह यह वडा है सुगम साधन
इस योग में होगा तुझे जो राज विद्या ज्ञान अर्जन ।
व्यक्त मुझसे ही सभी हैं यह जगत मुझसे व्यवस्थित
मैं न उनमें पर चराचर हैं मुझी में ही अवस्थित ।
जल जलाशय हिम जल में जिस तरह जल से तरा है
यह जगत परिपुर्ण मुझसे सव जगत मुझसे भरा है ।
और वे मुझमें नहीं पर देख ईश्वर योगमाया
है मुझी से भुत उत्पन्न पर न मैं उनमें समाया ।
गगन से पैदा उसी में ज्यों विचरता है पवन
जान वैसे ही अवस्थित है हैं मुझी में भुतगण ।
कल्पान्त में ये भुतगण मेरी प्रकृति पच गये
कलप आदि में पुनश्च हम उन्हे ही रच गये ।
स्वीकार निज प्रकृति को स्वभाव परवसता उन्हे
कर्म के अनुसार उनके वर वार रचता उन्हे ।
उदासीन ज्यों निरासक्त हुँ जो मैं कर्मो में सदा
इसलिये हे परंतप हुँ मैं नहीं उनमें वँधा ।
केन्द्र में हुँ अधिष्ठाता घुमता संसार है
सकास मेरी प्रकृति सवका ही सृजनहार है ।
मैं हुँ भुतो का महेश्वर झुठ लेकिन मानते हैं
तुच्छ तनधारी मुझे सत्ता नहींपहचानते हैं ।
यत्न मेरी प्राप्ति नित नाम का गुणगान करते
नमन वारम्वार मुझमे वे सदा ही ध्यान करते ।

DO NOT COPY

इस तरह वे दृढव्रती करते हमारी प्रार्थना
प्रेम से अनन्य भक्ति भाव से अभ्यर्थना ।
सव ज्ञानियों के ज्ञान से एकत्व की उपासना
वहुत को वहुधा परन्तु पृथक भाव अभ्यर्थना ।
मैं ऋतु यज्ञ औषधि स्वधा हुँ मैं ही अगन
मैं जगत में पार्थ सवकुछ घृत मंत्र मैं ही हवन ।
ऋग साम और यजुर्वेद हुँ मै पवित ओमकार हुँ
धाता पिता माता पितामह मैं जगत का सार हुँ ।
वीज अविनासी जगत का स्थिति का अक्षर मैं ही
शरण लेने योग्य मैं ही धाम परम भरतार मैं हुँ ।
मैं हुँ तपता अंशुमालि खींच कर लाता उन्हे
जलधि जल वारिद वनाकर मैं ही वरसाता उन्हे ।
मैं हु अमृत मृत्यु मैं हुँ सत असत मैं ही सभी
पार्थ मुझसे भिन्न जग में है नहीं कुछ भी कभी ।
विविध योगी पुत पापा सोमरस जो पान करते
स्वर्ग इच्छा में हमारे यज्ञ पुजा ध्यान करते ।
हैं वे पाते स्वर्ग उसमें दिव्य फल उपभोग करते
पुण्य के प्रताप से वे हैं वहाँ चरते विचरते ।
भोग वैभव स्वर्ग के वे पुनः आते मर्त्य में
पुण्य है तो स्वर्ग जो क्षिण पुण्य है तो गर्त में ।
भोग लिप्सा में सभी का इस तरह आवागमन है
स्वर्ग हेतु वेद वर्णित कर्म का जो अनुशरण है ।
अनन्य भक्ति भजन चिन्तन जो हो करते आप्त पैम
प्राप्त कर देता यही पर मैं ही उनका योग क्षेम ।
वे जो श्रद्धा में पगे हैं पर पुजते हैं देव दुजा
अज्ञान में ही वे वगे हैं वे हमारी ही है पुजा ।
सव यज्ञ मैं ही भोगता हुँ स्वामी भी मैं ही प्रिय
हैं न वे मर्मज्ञ मेरा अवनति है इसलिये ।
हैं देवव्रती देव पाते पितरों को पितृव्रती
भुत पुजा भुत मिलते मुझको मुझी में जिसकी भक्ति ।
आवागमन में इसलिये हैं आते जाते ये सभी
भक्त मेरे पर धनंजय फिर नहीं आते कभी ।
मैं हुँ खता प्रीतिपुवंक हो सगुण अर्पण सभी
फुल जल फल पत्र करते समर्पण प्रेमी जभी ।
तु जो खाता कर्म करता तप हवन जो दान करता
सव समर्पण कर मुझी में मैं वहा हुँ त्राणकर्ता ।
सव समर्पपण है मुझी में शुभ अशुभ फल मुक्त होगा
मुक्त हो मुझसे मिले संयास से संयुक्त होगा ।
है न द्वेषी प्रिय कोई मैं वसा सव भुत में सम
भजन जिनका प्रेम से वे मुझमें उनमें प्रकट हम ।
भक्त वन कर भजन करते जो दुराचारी भी अतिसय
हैं वे साधु ही समझना क्योंकि उनको सत्य निश्चय ।
शिघ्र वन धर्मात्मा वे परम शान्ति को हैं पाते
पार्थ निश्चय सत्य मेरे भक्त हैं ना नष्ट जाते ।
नारी श्वपच और वैश्य सुद्र हो पापयोनी भी अगर

DO NOT COPY

पार्थ मेरे आश्रय में सद्गति ही है मगर ।
ब्राह्मणों राजर्षियों को फिर हे अर्जुन क्या है कहना ?
रहित सुख तन क्षणिक मानव इसलिये मुझको ही भजना ।
मद्भक्त वन मम मन्मना तु नियुक्त कर मुझमें ही प्राण
पार्थ मुझमें ही परायण कर नमस्ते अनुष्ठान ।
इस तरह मुझको मिलेगा संसार सागर से तरेगा
फल हमेशा ही सुनहला इस समर में जो लडेगा ।

दशवाँ अध्याय
विभुति योग

कृष्ण

सुन परन्तु महावाहो वचन यह मेरा परम
जो है अतिसय प्रेम तुझसे हैं तेरे हित में ही हम ।
उद्भव नहीं हैं जानते चाहे महर्षि देवगण
सव तरह से पार्थ क्योंकि मैं ही हुँ उनका भी कारण ।
जनता मुझको महेश्वर अजन्मा अनादि तत्वतः
मर्त्य वे ज्ञानी अर्जुन मक्त हैं प्रत्यक्षतः ।
निर्णय ज्ञान निर्मोह क्षमा दमन समन प्रभव प्रलय
समता अहिंसा तुष्टि तप सत्य सुख दुख भय अभय ।
प्राणियों के भाव ये कीर्ति अकीर्ति दान सव
पार्थ मुझसे ही जगत में होते हैं वे प्रदान सव ।
चार सनकादि मनु और जो महर्षि सप्त जन
है प्रजा सव जगत जिनकी हैं वे मम संकल्प उत्पन्न ।
है नहीं संशय कोई जो वे हैं होते युक्त भक्ति
जानते मेरी विभुति जानते जो योगशक्ति ।
मुझसे जगत की उत्पति मुझसे जगत की चेतना
भाव श्रद्धा से पगे करते निरन्तर अर्चना ।
तुष्टि हमारे कथन से परस्पर हमारी वातचित
रमते मुझी में हैं सदा जिनका मुझीमें प्राण चित्त ।
ध्यान में मेरे सदा जिनमें उमडता प्रेम सागर
मैं हुँ देता योग ऐसा जो मिले मुझको ही आकर ।
उनके ही अन्तःकरण में उनके ही अनुकम्पार्थ मैं
अज्ञान तम का नाश करता ज्ञान से हुँ पार्थ मैं ।

अर्जुन

८

हैं परम पवि परम धाम हैं परम परमेश्वर
कहते हैं क्योंकि ये सभी जो हैं हमारे ऋषिवर ।
हैं परम पवि परम ईश्वर आप ही हैं परम धाम
हैं अजन्मा सर्वव्यापी दिव्य नर सुर देवनाम ।
ऋषि असित देवल देवर्षि महर्षि ऋषिवर तमाम
हैं जो कहते स्वयं कहते आप भी मुझसे हे श्याम ।
आप कहते जो मुझे सव सत्य ही हम मानते
है नहीं लीला प्रभु की देव दानव जानते ।
भुत भावन भुत ईश्वर हे जगतपति देव देव
जानते हे पुरुष उत्तम आप निज को स्वयंमेव ।
हैं समर्थ आप ही प्रभु जो करे वर्णन विभुति

DO NOT COPY

जो विभुति व्यप्त जग में जो प्रभु की स्थिति ।
हे प्रभु चिन्तन निरन्तर किस तरह कर जान सकता
योग्य किन किन भाव में मेरे लिये हो त्राणकर्ता ।
विस्तार से फिर भी कहें प्रभु निज विभुति योगशक्ति
वचन अमृत मम प्रभु की सुन नहीं होती है तृप्ति ।

कृष्ण

अव कहुँगा प्रधानता से निज विभुति को सभी
पर नहीं विस्तार का म अन्त जग में रे कभी ।
मैं हृदय में भुत के सव मैं हुँ सवकी आत्मा
मैं हुँ आदि अन्त मध्यम भी सभी कुरुआत्मा ।
मैं हुँ आदित्यों में विष्णु ज्योतियों में अंशुमान
मैं निशापति नक्षत्रों में पवनगण में दीप्तिमान
वेद में हुँ साम अर्जुन चेतना हुँ प्राणियों में
इन्द्र हुँ मैं सुरगणें में और मन हुँ ईन्द्रियों में ।
हुँ मैं शंकर रुद्रगण में यक्ष राक्षस में कुवेर
आठ वसुओं में हुँ अग्नि और शिखरों में सुमेर ।
स्कन्द हुँ सेनानियों में मैं हुँ सागर पुष्करों में
पार्थ मुझको जान मुखिया जो वृहस्पति गुरुवरो में ।
महर्षियों में मैं हुँ भृगु एक अक्षर शव्द मैं
यज्ञ में जप स्थिरों में हिमालय उपलव्ध मैं ।
मैं हुँ सिद्धों में कपिल मुनि चित्ररथ गन्धर्व में
देव ऋषियों में हुँ नारद अश्वथ वना तरु सर्व में ।
उच्चैश्रवा अश्वों में मैं हुँ अमृत लिये पहचान मुझको
कुंजरों में हुँ एरावत राजा नरों में जान मुझको ।
शस्त्रास्तों में वज्र हुँ मैं प्रजनन कन्दर्प हुँ
कामधेनु धेनुओं में सर्प वासुकी सर्प हुँ ।
मैं हुँ यम सव शाशकों में शेष हुँ सव विषधरों में
मैं वरुण हुँ जलचरों में अर्यमा सव पितरों में ।
मैं हुँ दैत्यों में प्रह्लाद मैं विहंगो में खगेस
मैं ही गणको में समय हुँ मैं हुँ मृगों में मृगेश ।
पवित्रकर्ताओं में वायु मैं मत्स्यों में मगर हुँ
मैं हुँ सरिताओं में गंगा राम हुँ मैं शस्त्रधर हुँ ।
पार्थ आदि अन्त मध्यम मैं जगत के सर्ग का
विद्यायों अध्यात्म वाद मैं विवादि वर्ग का ।
काल का भी काल हा मैं विश्व मुख अवतार हुँ
द्वन्द हुँ मैं समासो में वर्ण में ओंकार हुँ ।
मैं हुँ छन्दों में गायत्री श्रुतियों में वृहत साम
मैं हुँ कुसुमाकर ऋतु में मार्गक सव मासनाम ।
प्रवंचकों द्युतकीण प्रभावशाली में प्रभाव
मैं हुँ निश्चय विजय हुँ मैं सात्विकों का सत्व भाव ।
व्यास मुनियों में सभी हुँ कृष्ण हुँ मैं यादवों में
शुक्र हुँ मैं कविजनों में मैं धनंजय पाण्डवों में ।
दण्ड हुँ मै दमनकारी ज्ञानियों का ज्ञान हुँ
मैं नीति जिसमें जिगिष गोप्य रक्षक मौन हुँ मैं ।
और भी हे पार्थ हुँ मैं वीज भुतों के सभी

क्याकि चराचर भुत मुझसे हैं नहीं खाली कभी ।
पर नहीं है अन्त अर्जुन मेरी विभुति का कभी
यह जो वर्णन है यहाँ संक्षेप में ही हैं सभी ।
जो कुछ विभुति युक्त है सम्भव हमारे तेज से
मेरे विना है पार्थ मेरे वे सभी निस्तेज से ।
अथवा प्रयोजन क्या तुम्हे वह जानने से हे प्रिय
योगशक्ति अंश भर से हम जगत धारण किये ।

ग्यारवाँ अध्याय
विश्वरुप दर्शन योग

अर्जुन

मुझ पर अनुग्रह के लिये जो ये परम संदेश हैं
सुन प्रभु के वचन गोपन अज्ञानतम निःशेष है ।
सव भुत का उद्भव प्रलय मैंने सुना विस्तार से
शाश्वत महिमा प्रभु निज आपके मुखार से ।
ठीक वैसा ही प्रभु है जो यहाँ वर्ण तुम्हारी
रुप वह एश्वर्य पर देखुँ यहाँ ईच्छा हमारी ।
जानते जो देख सकता मैं विभुति रुप को
तो दिखायें हे योगेश्वर शाश्वत स्वरुप को ।

कृष्ण

हे पार्थ देखो सत सहस्त्रों नाना विधि वहुवर्ण नाना
मुर्ति हमारे रुप में जिनका कठिन है पार पाना ।
वसु रुद्र मारुत अश्विनी अदित्य मुझमें हे कपि ध्वज
और पहले जो न देखा देख वे आश्चर्य सव ।
भरतवंशी पार्थ तु अव जग चराचर साथ में
अन्य जो भी कामना देखो हमारे गात में ।
देख सकता है नहीं तु रुप को मेरे समष्टि
देख ईश्वर योग पर यह लो हमारी दिव्यदृष्टि ।

संजय

इस तरह कह पापहर्ता वे महायोगी हे राजन
पार्थ को उनने दिखाया वह अलौकिक रुप दर्शन ।
नाना आनन नयनन नाना राजन अद्भुत दर्शन नाना
दिव्यायुध कर में उनके और पहने आभुषण नाना ।
दिव्य गंध अनुलेप तन में दिव्य माला वस्त्र धारण
युक्त वे सव अद्भुतों से वे किये चहुँ ओर आनन ।
पार्थ ने दर्शन किया है उस समष्टि रुप का
परमात्मा ने जो कहा है ठीक उस अनुरुप का ।
नभ में उदय हो ज्यों रवि राजन सहस्त्रो साथ में
हो कदाचित पुण्य रश्मि जो प्रभु के गात में ।
पार्थ ने देखा अवस्थित विश्वरुप तन में वहाँ
पृथक भागो में वँटा सम्पुर्ण जग राजन वहाँ ।
सिर टेक रश्मिपुंज को आश्चर्य से विस्मित हुये
कर जोड वोला पार्थ ने रोमांच तन पुलकित हुये ।

अर्जुन

देखता हुँ देव तुझमें भुत सव सव देवता

DO NOT COPY

ऋषिगण अलौकिक सर्प शंभु कमल पर प्रजापिता ।
वहुभुज उदर वहुनेत्र मुख सव ओर देखुँ मैं अनन्ता
हे विश्वेश्वर मैं न देखु मध्य तेरा आदि अन्ता ।
मुकुट चक्र और गदा दण्ड तु दुर्निरीक्ष्य तु तेजोमय है ।
ज्योति अग्नि सुर्य के सम हे प्रभु तु अप्रमेय है ।
परव्रह्म जानने योग्य तु आश्रम परम हे परमआत्मन
तु अनादि धर्म रक्षक तु पुरुष अव्यय सनातन ।
रहित आदि अन्त मध्यम अनन्त वाहु और वीर्य
अग्निमुख संतप्त जग है नयन में शशि और सुर्य ।
परिपुर्ण तुझमें सर्व दिक नभ स्वर्ग अवनि वीच सारा
हैं व्यथित त्रिलोक प्रभु लख भयंकर रुप न्यारा ।
प्रवेशते सुरगण सभी गुणगान कुछ भयभीत करते
महर्षि और प्राप्त सिद्धि कल्याण हो स्तुति करते ।
आदित्य मारुत साधयगण वसु रुद्र अश्विनी विश्वेदेव
सिद्ध पितृ यक्ष दानव गंधर्व विस्मित देव देव ।
वहु नेत्र मुख का रुप महती वहु वाहु जंघा पैर हैं
विकराल वहु दाढें प्रभो जग देख भयभीत और मैं ।
फैला आनन चक्षु विशालनभ को छुता देदिप्यमान
धैर्य शम पाता नहीं हैं देख कर संतप्त प्राण ।
देख कर दाढें कराल प्रलय वह्नी आनन प्रकाश
दिक वोध भुला सुख नहीं प्रसन्न हों हे जगन्निवास ।
सव नृपों के समुदाय में धृतराष्ट की सन्तान सव
वह कर्ण भीष्म गुरु और मेरे पक्ष के प्रधान सव ।
मुख में भयानक आपके वे जा रहे हैं त्वरण में
विकराल दाँतों से लगे कुछ दिख रहे सिर चुर्ण में ।
जिस तरह वहु वेग अम्वु अंवुधि मिलते सरित से
नरवीर वे सव जा रहे प्रज्जवलित मुख में त्वरित से ।
ज्यों पतंगा अति वेग से जाते जवलन में नष्ट होने
लोग त्यों वे जा रहे मुख प्रज्जविलत प्रविष्ट होने ।
उग्र तापों से तपाते पुर्ण जग को हे प्रभो
प्रज्जवलित मुख ग्रसित खाते लोक रग को हे प्रभो ।
कौन हैं प्रचण्ड विष्णो हो प्रसन्न हो नमस्कार
चाहता क्योंकि नजानु स्व तुम्हारा सृजनहार ।

कृष्ण

काल हुँ विकराल अव हम लोकक्षय प्रवृत प्रवृत होंगे
विन तुम्हारे भी अवस्थित वीर योद्धा मृत होंगे ।
डाल दो हथियार फिर भी वच सकेंगे ये नहीं
मैं प्रलय हुँ इस प्रलय से वच सका कोई कहीं ?
पार्थ वन जा निमित्त केवल वे मरे मुझसे ही पहले
उठ विजित कर वैरियों को राज्य भोग कर यश रुपहले ।
भीष्म कर्ण गुरुद्रोण जयद्रथ हत मुझी से अन्य जो भी
भय न कर तु युद्ध कर निश्चय तुम्हारी विजय होगी ।

संजय

सुनकर वचन कर जोड करप्रणाम कर कम्पित हो
मुकुटधारी पार्थ वोला कृष्ण से भयभीत हो ।

अर्जुन

योग्य ही है कीर्तनों से जग प्रसन्न अनुरक्त है
भयभीत राक्षस भागते कर जोडते सिद्धहस्त हैं ।
कैसे नमे ना वे महात्मन तु है व्रह्मा का भी कर्ता
सत असत से परे प्रणवतु वही है समाहर्ता ।
नर सनातन आदिदेव हैं आप ही हैं जग निधान
आप ही सर्वत्र व्यापक आप ही हैं परमधाम ।
पवन पावक शशि यम जनक व्रह्मा वरुण सार
नमस्कार फिर फिर नमस्ते नमस्कार है सहस्त्र वार ।
अग्र पृष्ठ सव ओर से सर्वात्मन हे नमस्कार
अनन्त वीर्य तु विक्रमीतु व्यापक सर्वरुप संसार ।
प्रभाव से अनभीज्ञ मैं अज्ञानता में वह रहा
प्रमाद प्रेम से सखा कृष्ण यादव जो कहा ।
अपमान कीणा का प्रभो तु कर क्षमा हे अप्रमेय
आसन अन्न सय्या समय दुजा समक्ष या स्वयंमेव ।
जग चराचर का जनक अति पुज्यवान गुरु गरीयवान
कोई न सम फिर अधिक क्या हे अप्रतीम हे प्रतिभवान
चरणन निवेदि तगात निज भली भाँति मैं स्तुति करता
कर क्षमा अपराध जैसे जनक सहचर प्रीतकर्ता ।
अदृश्यपुर्व हर्षित हुँ मैं पर देखकर प्रव्यथित मन
देवरुप इलिये दिखायें जगन्निवास तु हो प्रसन्न ।
मुकुट चक्र और गदा कर में चाहता देखुँ मैं वैसे
विश्वमुर्ते सहस्त्रवाहो भव चतुर्भुज रुप जैसे ।

कृष्ण

मैंने अनुग्रह योगवल से रुप दिखलाया वही
अनन्त तेजोमय अनादि अन्य देखा है नहीं ।
देखा गया ना रुप यह नृलोक में अन्यान्य से
वेद अध्ययन यज्ञ या क्रिया तपस्या दान से ।
देखकर विकराल हो न मुढ तु न हो व्यथा
भयहीन प्रीतियुक्त मन हो देख पहले ही यथा ।

संजय

इस तरह कह चतुर्भुज हो पार्थ को दर्शन दिया
फिर सौमयमुर्ति कृष्ण तव उस भीत को सांत्वन दिया ।

कृष्ण

दुर्लभ अति यह रुप मेरा पार्थ देखा है जिसे
रहते सदा ले कामना सुर दर्शनो को भी इसे ।
मुझ चतुर्भुज रुप को देखा है तुमने जिस तरह
वेद तप ना ज्ञान यज्ञ से देख सकता इस तरह ।
अनन्य भक्ति से परंतप रुप यह मेरा है संभव
ज्ञान दर्शन प्राप्ति को अन्यथा यह है असंभव ।
कर्म मुझमें भक्त मम हैं जो रहित आसक्त मानव
सव भुत में निर्वैर है रे वह मुक्ती को प्राप्त मानव

वारहवाँ अध्याय
भक्ति योग

अर्जन

अनन्य प्रेमी नितय भजता इस प्रकार ही आपको
यह वडा या वह जो भजता निराकार ही आपको ?

कृष्ण

श्रद्धा सगुण ही पुजते मुझको एकाग्र चित्त हो
उत्तम अति मैं मानता हुँ योगियों में भीत हे ।
मन से परे अव्यक्त अक्षर सर्वव्यापी अचिन्त्य को
एक रस जो अचल स्थिर भजता निरन्तर नित्य को ।
इन्द्रिय समुदाय निग्रह सर्वत्र समवुद्धि रहा
हितरत सदा सव प्राणियों मैं वह मुझी में है वहा ।
है वडा ही क्लेस उसमें अव्यक्त चित्त आसक्त को
देह के अभिमान में मिलना प्रभु अव्यक्त को ।
सम्पुर्ण कर्मों को समर्पण हो मुझी में ही परायण
अनन्य भक्तियोग से करता सगुण गुण भजन गायन ।
मैं हुँ होता शिघ्र अमृत उनका सलील जग मृत से
अनन्य प्रेमी जो लाग है मुझमें निरन्तर चित्त से ।
कर मुझी में मन आरोपित कर मुझीमें मत निवेशित
उर्द्धव हो मुझको मिलेगा हो नहीं तु तात शंकित ।
कर नहीं सकता अगर तु चित्त को मुझमें अचल
तो करो अभ्यास नित मुझमें मिलन को हो विकल ।
असमर्थ है अभ्यास में भी कर समर्पण कर्म मुझमें
मेरे निमित्त सव कर्म से भी प्राप्त सिद्धि धर्म तुझमें ।
जो अशक्त है तु यदि साधन मेरा उपरोक्त को
कर्मफल को त्याग तव सव जितेन्द्रिय मन युक्त हो ।
इसमें भी जो तेरी अशक्ति मम आश्रम उद्योग कर
आत्म योगी पार्थ वनकर कर्मफल का त्याग कर ।
अज्ञान के अभ्यास से होता श्रेयस्कर ज्ञान है
ज्ञान से भी पर श्रेयस्कर पार्थ मेरा ध्यान है ।
ध्यान से उत्कृष्ट लेकिन कर्मफल को त्यागना
त्याग से तत्क्षण मिली है परम शान्ति सांत्वना ।
द्वेषहीन सव भुत में जो सवका प्रिय जो है दयालु
ममतारहित जो अहंशुन्यसुखदुख सभी मे सम कृपालु ।
है सतत संतुष्ट योगी यतआत्मा है दृढ निश्चय
अर्पित मुझीमें वुद्धि मन वह भक्त मुझको है प्रिय ।
जो न व्याकुल जीव से जिससे न व्याकुल जीव सारा
हर्ष अमर्ष उद्व्वेग भय से रहित जो मुझको है प्यारा ।
निरपेक्ष और निष्पक्ष जो गत व्यथा और सुचिकर है
आरम्भ का त्यागी सभी भक्त मेरा प्रीतिकर है ।
जो न हर्ष न द्वेष करता करता न शोक और कामना
शुभ अशुभ त्यागी मुझे हैं वह प्रिय भक्तिमना ।
मान और अपमान में सम अरिमित्र मे जो समान हैं
रहित है आसक्ति से सुख दुख शितोष्ण सम प्राण हैं ।
निन्दा प्रशंसा तुल्य हैं जो येन केन संतुष्ट नर
स्थिरमति मुझको प्रिय वह जो अनिकेतन अघर ।
युक्त श्रद्धा हो परायण उक्त अमृत धर्ममय

DO NOT COPY

पान जो निष्काम से करते हैं वे अतिसय प्रिय ।

तेरहवाँ अध्याय
क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभाग योग

कृष्ण

गात है यह क्षेत्र अर्जुन और जो मर्मज्ञ हैं
तत्वज्ञानी ने कहा उनको यहाा क्षेत्रज्ञ हैं ।
क्षेत्रज्ञ जानो पार्थ मुझको तु सभी ही क्षेत्र में
जनना इनको ही है रे ज्ञान मेरे नेत्र में ।
वह क्षेत्र जो जैसा है अर्जुन जो विकार जिस हेतु हुआ है
क्षेत्रज्ञ जो भी जिस प्रभाव का सुन सभी संक्षिप्त क्या है ?
वहुभाँति रिषियों ने कहा है गीत वहु विधि छन्द में
जो नियोजित युक्तियुक्त है व्रह्मसुत्र पद्यवंध में ।
वुद्धि प्रकृति मुल का पंच भुत और यह अहम्
इन्द्रियाँ दश एक मन रे रुप रस आदि अगम ।
अनाभिमान अदम्भ क्षमसुचि औ अहिंसा अनुग्रह हो
पुजना गुरुदेव का हो अन्तः अचल तनु विग्रह हो ।
कामना विद्वेष धृति संघात सुख दुख चेतना
इन विचारों के सहित संक्षेप क्षेत्र तुने सुना ।
सव भोग में वैराग्य है और जव अहम् निःशेष है
जन्म मृत्यु जरा व्याधि में देखना दुख दोष है ।
ममता न आशक्ति जिसे सुत गृह औरत सम्पति में
रहता सदा ही चित्त सम प्रिय अप्रिय प्राप्ति में ।
अव्याभीचारिणी भक्ति हमारी सुचि देश निर्जन में स्वभाव
विषयासक्त के समुदाय में हो सदा ही प्रेम अभाव ।
अध्यात्म में नित स्थिति तत्व अर्थ अनुदर्शना
ये सभी ही ज्ञान हैं अज्ञान विपरीत वर्तना ।
ज्ञेय जिनको जान मिलते आनन्द घट अमृत भरे
मै भलिभाँति कहुँगा सत असत से जो परे ।
कर पैर अक्षि मुकुट मुख सव ओर उनके कर्ण हैं
सवको जगत में व्याप्त उसकी स्थिति अवतीर्ण है ।
जनता गुण इन्द्रियाँ सव है रहित सव इन्द्रियाँ
निर्गण निरासक्त परन्तु है वृति गुण भाग क्रिया ।
सुक्षम है जो अविज्ञेय है वह निकट अति दुर है
चर अचर भी वही उससे चर अचर भरपुर है ।
अविभाज्य भुतों में परन्तु है विभक्त सा प्रतिति
ज्ञेय व्रह्म रुद्र विष्णु पालक संहारक उत्पति ।
वह है ज्याति ज्यातियों की है परे अति मोहमाया
ज्ञान ज्ञेय और ज्ञानगम्य है वसा सवकी ही काया ।
मैंने कहा संक्षेप में यह क्षेत्र ज्ञान और ज्ञेय रुप
जान इनको भक्त पाता है हमारा ही स्वरुप ।
तु प्रकृति पुरुष को जानो अनादि हैं उभय
पैदा इन्ही से पार्थ हैं सव चीज जो गुण दोषमय
कार्य कारण ये सभी रे हैं प्रकृति की ही रचना
पुरुष सुख दुख भोग में है उक्त की हेतु वना ।

DO NOT COPY

भोगता प्राकृत वस्तु नर वसा उसमें वही
कारण यही कि जन्म लेता सत असत योनि कहीं।
तन में वसी यह आत्मा ही भोक्त भर्ता महेश्वर
अनुमन्त उनद्रष्टा वही रे है वही परमात्मा नर।
जानता प्रकृति नर को जो गुणें से सहित सारे
सर्वथा सव तरह करते हैं नहीं आते दुवारे।
ध्यान से नित शुद्ध कोई हृदय में दर्शन करे
देखते हैं ज्ञान से कुछ कर्म से कुछ दुसरे।
और है अनजान जो वे पुजते सुनकर किसी से
श्रुति परायण वे सभी तरते हैं भव सागर उसी से।
जो हुआ पैदा यहाँ हर चीज स्थिर और जंगम
क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का ही समझना है पार्थ संगम।
सम परम सव भुत में होकर प्रभु ही निवेसते
नाश में अविनाश जो भी देखते वे देखते।
देखता सर्वत्र सम जो सम अवस्थित ईश को
सद्गति के रुप में पाता वही जगदीश को।
कर्ता प्रकृति को अकर्ता आत्मा को देखता है
पार्थ जग में वह पुरुष ही सत्य को निरेखता है।
देखता जिस क्षण पुरुष यह एक में ही अनेक को
एक से विस्तार तव पाता प्रभु अनदेख को।
पार्थ तन में भी वसा निर्गुण अनादि और अक्षय
वास्तव में कुछ न करता और न अनुरक्त है।
जिस तरह से लिप्त है न यह गगन पर व्यक्त है
सर्वत्र स्थित भी नहीं तन में परम अनुरक्त है।
व्रह्माण्ड को प्रदिप्त करता जिस तरह केवल रवि
आत्मा करती प्रकाशित क्षेत्र को वैसे सभी।
क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ अन्तर जानते जो सन्त हैं
पहुँचते हैं वे पुरुष परमात्मा पर्यन्त हैं।

चौदहँवा अध्याय
गुण त्रय विभाग योग

कृष्ण

है परम ज्ञानों में उत्तम मैं कहुँगा फिर उसे
जानकर मुनिजन गये हैं परम सिद्धि नर उसे।
पार्थ पाकर रुप मेरा ज्ञान का इस अश्रय है
न जन्म लेता सर्ग में न व्यथित करता प्रलय है।
योनि है मम महत माया मैं हुँ देता वीज उसमें
पार्थ होती है यहाँ सम्भव तभी हर चीज उसमें।
सव योनियों में पार्थ रे जितने भी तनधारी यहाँ
वीज दाता हुँ पिता मैं व्रह्म् महतारी यहाँ।
सत रजस तम जो दिया है त्रिगुणी माया यहाँ
वाँधते हैं महावाहो अव्यय परम काया यहाँ।
उनमें सतोगुण है जो निर्मल है प्रकाश है निर्विकार
संग सुख और ज्ञान के है हे अनघ संवंधकार।

DO NOT COPY

राग रुप जो रजस पैदा कामना अनुराग से
बाँधता है कर्म से और कर्मफल प्रभाग से ।
तमस वह अज्ञान से पैदा है मोहन जाना
प्रमाद निन्द्रा अलस से जो जीव का वंधन वना ।
रजस होता है कर्म में हे पार्थ सत सुख को सजाता
ज्ञान को ढक किन्तु यह प्रमाद में है तम लगाता ।
सत्व होता है यहाँ रज तम की जव अभिभुति है
सत तमस रज सत दवाकर रजस तम संभुति है ।
सव द्वार अन्तस देह में पैदा विवेक और चेतना
सत्वगुण जाकर वढा है चाहिये तव देखना ।
पार्थ होती है जगत में रजस की अभिवृद्धि जव
लालसा लोभ और अशान्ति है सकर्म प्रवृति तव ।
होती है वृद्धि कुरुनन्दन देह में जव तमस की
मोह तम पैदा कुचेष्टा अप्रवृति मनस की ।
प्रचुरता में सत्वगुण की देह जव पाता पतन
तव है पाता दिव्य निर्मल उत्कृष्टतम लोकायतन ।
रजस वृद्धि में गया जो आता है कर्मासक्त वन
मुढ योनि पर है पाता तमस गुण में त्यक्त तन ।
कर्म है उत्कृष्ट तो फल सात्विक निर्मल कहा है
फल रहा दुख रजस का अज्ञान तम का फल रहा है ।
रजस लिप्सा प्राण का रे ज्ञान को पर सत सवाँरे
मोह चेष्टा व्यर्थ तम से और भी अज्ञान सारे ।
उर्ध्वगामी सत्व स्थित राजसी हैं वीच में
जंघन्य गुण वृति जिन्हे जाते हैं योनि नीच में ।
न अन्य कर्ता त्रिगुणों से इन गुणों से भी परे हम
देखता साक्षी जभी तव स्वरुप पाता है परम ।
त्रिगुणों को पार कर जिनसे हैं इनका तन वना
जन्म मृत्यु जरा दुख से मुक्त है अमृत सना ।

अर्जुन

लक्षणों से युक्त किन जो त्रिगुणों के पार उनके ?
पार होते किस तरह किस तरह के आचार उनके ?
रश्मि प्रकृति और मोहन ईच्छा नहीं अनिवार्य है
या प्रकृति निवृति वे त्रिगुणें के कार्य हैं ?

कृष्ण

गुण ही गुणों में वर्तते हैं वन साक्षी स्थित हुआ
जो न विचलित हो सके और जो नहीं विचलित हुआ ।
अश्म कंचन लोष्ट सम दुख सुख में है सम स्थिति
प्रिय अप्रिय तुल्य हैं हैं तुल्य निन्दा स्तुति ।
मित्र अरियों में वरावर न कर्ता अभिमान है
त्रिगुणों से वे परे सम मान और अपमान है ।
त्रिगुणों को कर उलंघन पाते हैं वे आनन्दघन
अनन्य भक्ति योग से करते हैं जो मेरा भजन ।
व्रह्म् अव्यय धर्म शाश्वत सवका वहाा विश्राम है
एक रस आनन्द अमृत सव हमारे नाम हैं ।

पंद्रहवा अध्याय
पुरुषोत्तम योग
कृष्ण

उर्ध्व मुल और अधः शाखा पर्ण जिनके वेद हैं
जानते अश्वथ अनश्वर जानते संवेद हैं ।
मर्त्य में जड कर्म वन्धन सत रजस तम से हैं सिंचे
योनि शाखायें विषय फैली है पल्लव उर्ध्व नीचे
न रुप मिलता जगत का वह न अन्त अदि सा प्रतिष्ठा
काट अश्वथ जगत जड यह शस्त्र हो वैराग्य निष्ठा ।
जिसमें गया नहीं लौटता तव चाहिये वह खोजना वढ
जिससे जगत वृद्धि उसी के चाहिये होना शरण ।
न मान मोह अनुराग दोष अध्यात्म वास नहीं कामना
युक्त सुख दुख द्वन्द जाते परमपद ज्ञानीमना ।
ना निशापति और पावक उद्भासते दिनकर नहीं
वह परमपद धाम मेरा लौटना जाकर नहीं ।
है मेरा ही अंश वह जीवात्मा तन में सनातन
प्राकृत मन और इन्द्रियों रे वही करता है कर्षण ।
गंध गंधस्थान से जैसे पवन संयान होता
वैसे लिये मन इन्द्रियाँ जीवात्मा प्रस्थान होता ।
श्रोत्र चक्षु और रसना त्वचा घ्राण मन आश्रय
जीवत्मा है भोगता इनके सहारे ही विषय ।
या त्रिगुणें के भोग में या उद्गमन या देह में
देखते ज्ञानी ही केवल वह न जो संदेह में ।
यत्न रत योगी ही देखा वह अवस्थित आत्मा
पर न देखा यत्न से भी हैं जो अकृत आत्मा ।
उस रवि में तेज है जो उद्भासता यह जग अखिल
या शशि में या अनल में वे तेज हैं मेरा निखिल ।
ओज से निज भुत धारण मैं ही करता जा धरा में
औषधों को पोषता हुँ चन्द्रमा वन रस भरा मैं ।
मैं ही वैश्वानर हुआ सव प्रणियों के गात के
प्राण अपान संग हो पचाता अन्न चारों जात के ।
ज्ञान अपोहन स्मृति मुझसे मैं वसा सवके हृदय हुँ
सव वेद से ज्ञातव्य मैं ही वेदान्त कर्ता वेदविद हुँ ।
जगत में हैं दो पुरुष हे पार्थ अक्षर और क्षर
क्षर है तन सव प्रण्मिायों के हैं कहते जीव अक्षर ।
वह पुरुष है अन्य ही हे पार्थ है इनसे भी उत्तम
कर प्रवेश जग थामता कहते हैं अविनाशी परम ।
मैं हुँ उत्तम अक्षरों से अतीत जड से सर्वथा
इसलिये है वेल जग में प्रसिद्ध पुरुषोत्तम प्रथा ।
जे जानकर मुझको नरोत्तम इस तरह मर्मज्ञ हैं
हर भाव से भारत मुझे भजते वही सर्वज्ञ हैं ।
गुह्तम यह शास्त्र जो मैंने कहा हे पार्थ है
वोध से मानव वना रे ज्ञानवान कृतार्थ है ।

सोरहवाँ अध्याय

DO NOT COPY

देवासुर सम्पद विभाग योग

कृष्ण

अभय संशुद्धि व्यवस्थिति योग ज्ञान औरुध्यान के
दमन दान यश आर्जवमतप स्वध्याय भगवान के।
अक्रोध अहिंसा उपरति हो तयाग वासव सत्यता हो
ह्रीर अलिप्सा अचंचलता मन दया और मृदुता हो।
तेज क्षमा और धृति शुचि द्रोह नहीं नहीं पुज्यता
हैं ये लक्षण उस पुरुष के जो लिये सुर सम्पदा।
पार्थ सम्पद आसुरी रे दर्प दम्भ अभिमान हैं
जो लिये पैदा हुये पारुष्य क्रोध अज्ञान हैं।
सुर सम्पदा है मोक्ष को वंधन है आसुर सम्मति
पाण्डव नहीं तु शोक कर तु है लिये सुर सम्पति।
सर्ग में सुर असुर दोही भाव जग में मानवों के
सुर सुना विस्तार से हे पार्थ सुन अव दानवों के।
न ज्ञान है कर्तवय का न निवृति पहचान है
इसलिये शुचि आचरण ना नहीं असुर सत्यवान हैं।
कहते हैं वे जग काम से ही काम से है अन्य क्या ?
झुठा निराश्रय अनीश्वर यह जगत सारी जया।
इस दृष्टि को अवलम्ब्व कर वे मन्द वुद्धि जो विधर्मी
सर्व अपकारी वे करते नाश जग का कुरकर्मी।
मोह से ले असत आश्रय कामना दुष्पुर वे
आचार लेकर भ्रष्ट विचरे मद मान दम्भ भरपुर वे।
भोगना आनन्द केवल मानते कौन्तेय वे
पर्यन्त मृत्यु आश्रय चिन्ता लिये अपरिमेय वे।
काम क्रोध के आश्रय अनुवंध आशा सैकडें
अन्याय से सुख भोग को संग्रह करे वे आँकडें।
सोचता है यह मिला है कामना पुरी अभी
आज इतनी सम्पति वह जायेगी हो फिर कभी।
उस रिपु को मार डाला करुंगा दुजा हनन
ऐश्वर्य इश्वर मैं ही मैं ही सिद्ध वलशाली प्रसन्न।
अनेक चित्त विभ्रान्त वे हैं कोह जाल आवृत वे
प्रसक्त भोग विलास में गिरते नरक अपवित वे।
श्रेष्ठ निज को मानते वे युक्त हो पद मद निधि
करते यजन हैं नाम के पाखण्ड में वे अविधि।
अहंकार वल दर्प क्रोध और कामना के अश्रय
विद्वेषी मम पर निज तनु निन्दक सकल सुरधीप तनय।
गिराता फिर फिर जगत में कुरकर्मी नराधमों को
योनि आसुर में ही मैं विद्वेषी उन अधमाधमों को।
मुढ आसुर योनियाा ही प्राप्त वे मुझको न पाकर
उसमें भी गिरते हैं अति रौरव नरक में नीच जाकर।
त्रिविध नरक के द्वार नाशक आत्मा के पार्थ हैं
काम क्रोध और लोभ तिनों इसलिये त्यागार्थ हैं।
मुक्त जो भी हुये अर्जुन त्रिविधों के द्वार हैं
आचरण कल्याण का उनका वही भव पार है।
आचरण मनमान जिनका शास्त्र के प्रतिकुल है

DO NOT COPY

है न सिद्धि सुख गति रे सर्वथा दुख शुल है।
प्रवंध कार्य अकार्य में ये शास्त्र ही हैं रे प्रमाण
योग्य इससे तु उसी के शास्त्र में जो विधान।

सतरहवाँ अध्याय
श्रद्धात्रय विभाग योग

अर्जुन

त्याग कर जो शास्त्र करते युक्त श्रद्धा ही भजन
सत रजस तम स्थिति क्या उन मनुष्यों के किसन ?

कृष्ण

मानवो में त्रिविध हैं स्वभावजा श्रद्धा मनन
सत रजस और तमस भी हे पार्थ कर उनका श्रवण।
जैसा है जो वैसा वही हे पार्थ श्रद्धा के शरण
अन्तःकरण अनुरुप श्रद्धा तदनुरुप अन्तःकरण।
जैसी पुरुष की आस्था वैसा ही उसका रुप है
पुरुष श्रद्धामय है श्रद्धा अन्तःकरण अनुरुप है।
भजते हैं सात्विक देव को और यक्ष राक्षस राजसी
भुतगण को प्रेत को भजते परन्तु तामसी।
शास्त्र के हो रहित केवल घोर तप में तप रहे
काम राग वल दर्प में जो अहम् में मर खप रहे।
पार्थ मुरख आसुरी वे जानना है यह तुझे
कृष करते गात में पंच भुत अन्ततः मुझे।
प्रिय प्रकृति के तईं हैं तरह तीन आहार के
सुन पृथक यज्ञ दान तप हैं तीन ही प्रकार के।
वर्द्धक है वुद्धि आयु वल आरोग्य सुखकर प्रीतिकर
स्नेह रस आहार थिर है सात्विक को रुचीकर।
कडवे खट्टे अति उष्ण तीक्ष्ण नमकीन रुखे दाहकारक
आहार राजस को प्रिय प्रदान दुख चिन्ता विदारक।
है प्रिय तामस पुरुष को अधपका रसहीन जुठन
जो दुर्गंधित और वासी और भी अपवित्र भोजन।
है यही कर्तव्य पर वांछा नहीं यजमान में
है भजन सात्विक वही मन हो समाधि ध्यान में।
यजन पर अभिप्राय फल है पार्थ दृष्टि में जभी
दम्भ के लिये ही केवल यज्ञ वे राजस सभी।
विधिहीन और मंत्रहीन विन दान अन्न विन दक्षिणा
यज्ञ वह तामस कहाता जो हुआ श्रद्धा विना।
देव द्विज गुरु पज्ञ पुजन सरलता सुचि व्रह्मचर्य
और अहिंसा ये सभी हैं पार्थ तन का तपश्चर्य।
स्वाध्याय हरिनाम जप और अनुद्वेग प्रियकर हितैषी
पर्थ ये तप वचन के हैं अन्तः हो जैसा वाणी वैसी।
मौन मन निग्रह खुशी और सौम्यता अन्तःपवि
पार्थ जग में ये कहाता तपस्या मन के सभी।
निष्काम योगी ने किया हो परम श्रद्धायुक्त मन
उक्त तिनों तरह के कहते उन्हे सात्विक तपन।
सत्कार मान पुजार्थ अथवा दम्भ में जो तप धनंजय

DO NOT COPY

तप यही राजस कहा है फल क्षणिक होता अनिश्चय ।
अनुपकारी को मिले जब है यही कर्तव्य जान
देश काल और पात्र जैसा तो वही है सत्य दान ।
प्रत्युपकार अथवा क्लेश में या रख फलो को ध्यान में
दान जो इस तरह ही है दान राजस दान में ।
अयोग्य देश और काल पात्र अथवा विना सत्कार में
दान तामस है वही अथवा मिला तिरस्कार में ।
ओम तत सत तीन ऐसे नाम हैं सर्वज्ञ के
है विदित इससे ही जग में वेद व्रह्मण यज्ञ के ।
व्रह्मवादी से नियत जो यज्ञ वा तप और दान
ओम से प्रारम्भ होना इसलिये उनका विधान ।
भाव सव तत परम का फल का न अभिसंधान है
यज्ञ दान तप तव हुये कांक्षा जिन्हे कल्याण है ।
सद्भाव साधुभाव में सत शव्द का प्रयोग होता
श्रेष्ठ कर्मो में यही हे पार्थ सत उपयोग होता ।
स्थिति वह सत कहा जो यज्ञ वा तप दान में
सत सदा निश्चित रहा जव कर्म हो भगवान में ।
विन आस्था के तप हवन या कर्म हो या दान में
सव असत फल कुछ नहीं इहलोक वा गतप्राण में ।

अठारहवाँ अध्याय
मोक्ष संयास योग
अर्जुन
पृथक पृथक वैराग्य त्याग केशव मधुसुदन अरिमर्दन
तत्व इनके हे प्रभो अव जानने की है लगन ।
कृष्ण
काम्य कर्म के तयाग को कितने विदुर वैराग्य जाने
त्याग को कितने निपुण सव कर्मफल के त्याग माने ।
कई एक कहते मनीषि छोड केवल कर्म दोषी
अन्य क्रियायें न किन्तु यज्ञ तपस्या दान जैसी ।
त्याग के उस विषय में हे पार्थ निश्चय सुन हमारे
सत रजस तम त्रिविध हैं नरश्रेष्ठ जितने त्याग सारे ।
न त्याज्य तपस्या और दान वल्कि यही कर्तव्य है
पावन मनीषी को वनाता तपन दान वा यज्ञ है ।
इसलिये यज्ञ दान तप वा और जो सत्कर्म हैं
करना सुनिश्चित मत हमारा मानवों का धर्म है ।
त्याग देना कर्म नियत को ठीक नहीं ना उचित सही है
त्यागना पर त्याग तामस मोह से निश्चित वही है ।
दुख रुप ही है कर्म सव भय काय क्लेश से त्यागना
त्याग राजस है परन्तु कुछ नहीं फल का वना ।
कर्म नियत कर्तव्य कही करना सव धर्म कर्म कीरती है
राग अनुराग कर्मफल छोडो सात्विक पार्थ वही विरती है ।
कर्म अमंगल मंगल कीरती द्वेष रहित नहीं रागी
सत्य समाहित पुरुष वही है निडर चतुर पत्यिागी ।
कर्म अकर्म सुकर्म जति त्याग सके नर के वस नाही

त्याग वही त्यागी कहलाता त्याग सके फल का रसना ही ।
कुफल सुफल मिश्रित नतीजा लोक लोकान्तर जो अनुरागी
पर न कहीं किंचित सुनिश्चित कर्मफलों का जो वैरागी ।
सुन मुझसे भलिभाँति वही पार्थ पाँच सव कर्म निवेरा
सांख्य सिद्धान्त यही इनसे ही सिद्धि मुक्ति कर्मो का फेरा ।
कर्तार आधार सार विधि नाना विविध चेष्टा दैव पुराना
पार्थ पाँच कारण सिद्धि के हर सिद्धि इनसे ही पाना ।
तन से वचन से मन से मानव करता जो कुछ रीत विपरीत है
पार्थ पाँच कारण सिद्धि के कारण उन सवका निश्चित है ।
मैल मति फिर भी जो माने कर्ता केवल हंस शुचि को
पार्थ यथार्थ न दुर्मति जाने दर्शन सांख्य पंच विरचि को ।
निर्लिप्त मति जग में जव न कर्ता मान गुमान शरीरी
न हन्ता मार सकल जग को भी न पाप पाश पग जान शरीरी ।
ज्ञान ज्ञेय ज्ञाता परिज्ञाता ये तीनों प्रेरण कर्मो के
संग्रह ये तीनो कहलाते कर्ता कर्म करण कर्मो के ।
ज्ञान कर्म कर्ता तीनो ही तनि तीन पुस्तक सांख्य वताती
सुन गुण गुण अनुरुप वही अर्जुन त्रिगुण दर्शन भलीभाँति ।
अन्तस एक परम परमेश्वर भुत विभक्त परन्तु सारे
यही वोध जो ज्ञान करो जान ज्ञान वे सात्विक सारे ।
भाँति भाँति के भाव परन्तु गट गट में देखे जव मानस
यही वोध जो ज्ञान करावे पार्थ जान ज्ञान तव राजस
जो आसक्त समस्त कहीं है कार्य रुप तन एक परन्तु
जान ज्ञान हे पार्थ वही है तुच्छ हीन तत तामस तन्तु ।
द्वेष नहीं निःसंग नियत हो निरअनुरंजन निर्वत्सर नर
कर्म हुआ इस धर्म हुआ तव कहलाता सत्कर्म धनुर्धर ।
जो जिस कर्म परिश्रम ज्यादा भोग पिपासा किन्तु कतिपय
गर्व गुमानी से सम्पादित यह राजस का कर्म परिचय ।
फल परिणाम हानि हिंसा का नहीं शक्ति का धयान शरीरी
कर्म वही तामस जिसमें होता केवल अज्ञान शरीरी ।
असंग उमंग धीरज जिसमे है पार्थ नहीं है जो हमवादी
कहते कर्ता सात्विक उनको न सिद्धि असिद्धि हर्ष शाकादि ।
राग अनुराग कर्मफल इच्छा हिंसा लालच हर्ष शोकारी
है जिसमें राजस कहलाता कर्ता पार्थ अदुष्टाचारी ।
दुर्मत धुर्त असक्त आलसी जडता सुत्री दीर्घ विषादी
है जव जीव जीविका नाशक कर्ता है तव तामसवादी ।
सुन सम्पुर्ण वे वेद विभाजन निज निज अवगुण के कारण
तीन तरह की वुद्धि धृति भी निर्णशक्ति और शक्ति धारण ।
कार्य अकार्य अभय भय जाने पंच विरक्ति प्रकृति को
सात्विक वुद्धि पार्थ वही है जाने जो वंधन मुक्ति को ।
कार्य अकार्य अधर्म धर्म का जिस वुद्ध में भान नहीं है
तव कहलाती वुद्धि भारत राजस वुद्धि जान वही है ।
जिस वुद्धि से मानव मन में अधर्म धर्म में परिवर्तित है
वह वुद्धि है तामस जिसे लगती हर वस्तु विपरीत है ।
जिस धारण शक्ति से मानव धारण ध्यान प्राण मनवृति
और कियायें इन्द्रियों की तव कहलाती सात्विक धृति ।

शोक विषाद भय मद स्वप्नो को दुर्मेधा जव छोड न पाये
जिस धारण शक्ति यह होती वह धृति तामस कहलाये ।
सुन सुन सुन अव हे भरतर्षभ तीन तरह के सुख संसारी
जिस सुख भजन मनन सेवा में प्राप्त पार हर दुख संसारी ।
गरल सम लगाता पुर्व परन्तु फल परिणाम सुधा सम होता
वह सुख सात्विक सुख उत्पन्न जो परम प्रसाद समागम होता ।
सुख संयोग विषय इन्द्रियाँ तत्काल सुधा सदृश शरीरी
इस कारण राजस कहलाता फल अन्तिम सम विष शरीरी ।
उभय भोग परिणाम परन्तु प्रमाद पुर्ण निन्द्र आलस के
मोहित करता हंस शुचि को सुख कहलाता है तामस के ।
भु नभ नर किन्नर देवों में और कहीं भी सत्व नहीं है
रहित रहा ही त्रिगुण माया जो प्रकृति प्रदत्त कही है ।
द्विज क्षत्री और वैश्य सुद्र जो इन सवके सुन हे भारत है
कर्म विभाजन धर्म विभाजन जो कुछ सव प्रकृति प्रदत्त है ।
दमन शमन तप शौच सरलता क्षमाशिलता आस्तिकता रे
ज्ञान विज्ञान परम तत अनुभव सहज स्वभाविक व्राह्मणता रे ।
कर्म स्वभाविक है क्षत्रि के स्वमी भाव और शुर वीरता
हो न पलायन समरभुमि से तेज धीरता दान चतुरता ।
सहज स्वभाविक वैश्य कर्म हैं क्रय विक्रय खेती गोपालन
वैसे ही शुद्रों के भी कर्म स्वभाविक है परिचारण ।
निज निज कर्म धर्म में तत्पर पाता है संसिद्धि हर नर
हर नर अपने कर्म लगा ही सुन विधि है पाता पर क्योंकर ।
जिनमें जिसमें सकल चराचर जग में जिसकी ही अनुभुति
कर्म स्वकर्म परम पद पुजा मानव को संसिद्धि होती ।
दुजे के गुणयुक्त धर्म से विगुण श्रेयस्कर भी अपना है
स्वधर्म नियत जो कर्म करेगा तो न कोई किल्विष वना है ।
सहज स्वभाविक दोष सहित भी छोड न देना कर्म कही है ।
धुँये से पावक सम कोई दोष रहित हो कर्म नहीं है ।
गत आसक्ति विगत अभिलाषा जीत चुका अन्तस जिसने है
नर निष्कर्म परम संसिद्धि प्रप्त सांख्य के वस उसने है ।
जो कि परा निष्ठा ज्ञानों के सुन संक्षेप ही उसकी वाणी
वह निष्कर्म परम सिद्धि फिर पाता कैसे काई प्रणी ?
विरज मति हो सात्विक धारण संयम नियम इन्द्रियाँ अन्तस
विषय विरक्त शव्द आदि सव नाश द्वेष अनुरंजन सरवस ।
विजन विरज निर्जन सेवन हो ज्यो ज्योनार अल्प भोजन हो
जीत चुका हो तन मन वाणी कठिन विरक्ति ध्यान मगन हो ।
अहंकार वल दर्प कामना कोध परिग्रह निःसंयोगी
विन ममता निशान्त वना जो योग्य परम पद पात्र वियोगी ।
प्रमुद वदन मन शोक न ईच्छाएक हरेक परम पद योगी
सम सव भुतो में ऐसे जो प्राप्त पराभक्ति तव होगी ।
सार सारांश पराभक्ति यस मैं जो जितना जाता जाना
जन सारांश मेरा मुझमें फिर उस भक्ति तत्काल समाना ।
आगत आश्रय मम अविनाशी शाश्वत संत परम पद दाता
कर्म धर्म सव सदा सर्वदा मम अनुकम्पा करता कराता ।
सव कर्मो को मन से अर्पण कर सत्कर्म के आश्रित हो जा

DO NOT COPY

मेरे परायण सव कुछ सरवस मुझमें ही तु सततचित्त हो जा ।
सव संकट को पार करेगा मम अनुकम्पा मम चित्त होकर
जो मत्सर से यह न सुनेगा तो क्षय होगा मुझको खोकर ।
जो तु अहं वस मान रहा है मिथ्या है यह समर न होगा
पर तेरे स्वभाव भरा जो करना उससे जवरन होगा ।
चाह रहा है जिसे न करना हे कुन्ति सुत मोहन के वस
करना होगा वही परन्तु पुर्व प्राप्त प्रवृति वरवस ।
पार्थ परम परमेश्वर वैठा सव भुतों के मर्मस्थल में
माया त्रिगुण से हो आरुढ भरमाता है कर्मस्थल में ।
मदभक्ति से मदभक्तों में इस गीता को जो भी भरेगा
पार्थ कोई संदेह न इसमें वह मुझको ही प्राप्त करेगा ।
और न भावी होगा कोई इससे वढकर प्रियकर मेरा
और न कोई इससे वढकर मानव कर्ता हितकर मेरा ।
ज्ञान यज्ञ मत पार्थ हमारा पुजा जाउँ उसके द्वारा
पुण्य धर्ममय यह परिचर्या जिसने गाया और सँवारा ।
सहित श्रद्धा श्रवण भी जो नर दोष रहित हो यह कर लेगा
जायेगा सुरलोक परानी हो पापों से मुक्त तरेगा ।
पार्थ किया क्या श्रवण तुने इस गीता को ध्यान सचित हो ?
क्या सम्मोहन नष्ट हुआ जो आया था अज्ञान जनित हो ?

अर्जुन

अनुकम्पा अच्युत तुम्हारी मैं सम्मोहन नष्ट खडा हुँ
गत संह प्राप्त स्मृति मैं तेरे ही चरण पडा हुँ ।

संजय

अद्भुत अचरज रोमांचितकारी सुना मैंने परिचर्चा सारी
जो कुछ उनके वीच हुआ है राजन अर्जुन कुँजविहारी
परम गुढतम ज्ञान वहाँ पर योग योगेश्वर स्वयंमेव ही
है कहते साक्षात सुना मैं अनुकम्पा से व्यासदेव ही ।
जो कुछ उनके वीच हुई है परिचर्चा अचरज हितकारी
पुनि पुनि राजन याद मुदित मन पुनि पुनि होता हर्ष सुखारी ।
कितना अद्भुत रुप हरि का कितना मैं विस्मय कर पाउँ
जव जव याद करुँ तव तव मैं पुनि पुनि हर्ष से भरभर जाउँ ।
योग योगेश्वर मुरली मनोहर गाण्डिवधारी पार्थ जहाँ पर
विजय श्री नीति अचल विभुति राजन हैं ये सकल वहाा पर ।

समाप्त

Copyright © 2022 by Dr Shiva Shanker Yadava

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or used in any manner without permission of the copyright owner except for the use of quotations in a book review.

DO NOT COPY

DO NOT COPY